जनवरी - जून 1998 प्रतियोगिता विशेषांक वर्ष : 30 ✲ अंक : 1/2

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

पोखरण में हुए परमाणु विस्फोट से बना क्रेटर

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

परिषद हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार हेतु नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं "वैज्ञानिक" पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है :

परिषद सदस्यता (रु. में)				वैज्ञानिक शुल्क (रु. में)	
	एक वर्ष	आजीवन	संरक्षक		एक वर्ष
व्यक्तिगत	50	400	5000	व्यक्तिगत	50
संस्थागत	100	1000		संस्थागत	100

- "वैज्ञानिक" पत्रिका की कोई आजीवन सदस्यता / शुल्क नहीं है।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को "वैज्ञानिक" निःशुल्क भेजी जाती है।
- सभी शुल्क **हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से केवल **डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई)** द्वारा ही भेजें। **मुंबई** से बाहर के चैक, मनीआर्डर एवं पोस्टल आर्डर द्वारा भेजा शुल्क स्वीकार नहीं होगा।
- कृपया शुल्क के साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिये गये आवेदन पत्र के प्रारूप के अनुसार भेजें।
- संरक्षक सदस्य, यदि चाहें तो, उनका एक विज्ञापन प्रतिवर्ष "वैज्ञानिक" में निःशुल्क छापा जा सकता है।

-: *"वैज्ञानिक"* में विज्ञापन :-

हिंदी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में "वैज्ञानिक" अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सेमी x 21 सेमी है।

विज्ञापन की दरें (प्रति अंक)

अंतिम आवरण	: रु. 2,500/-	पूरा पृष्ठ	: रु. 1,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	: रु. 2,000/-	आधा पृष्ठ	: रु. 800/-

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1998

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ साथ अच्छे रेखाचित्रों/फोटोग्राफ, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है।** अतः चित्रों को अलग से सफेद कागज/ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हों तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्द) भेजें।

पुरस्कार : प्रथम - रु. 2000/=, द्वितीय - रु. 1500/=, तृतीय - रु. 750/=

अंतिम तिथि : 15 दिसंबर 1998

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार, प्रत्येक रु 500/- के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होंगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री इंद्र कुमार शर्मा, प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक "वैज्ञानिक", पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD),
भा. प. अ. केंद्र (BARC), मुंबई 400 085

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

प्रतियोगिता विशेषांक

वर्ष 30 अंक 1/2

जनवरी - जून 1998

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री इंद्र कुमार शर्मा

डॉ. अशोक कुमार सूरी

श्री राम अवतार अग्रवाल

डॉ. सतीश कुमार गुप्ता

श्री कुलवंत सिंह

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

श्री हरिओम मित्तल

डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला

डॉ. राज नारायण पांडेय

डॉ. भूपेंद्र सिह तोमर

संपादकीय 3

लेख

1. जेनेटिक क्लोनिंग : वरदान या अभिशाप 5
   - डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
2. ज्वार-भाटा से बिजली 9
   - परेश र. वैध
3. मंगल अभियान : कुछ उपलब्धियां 16
   - विनिता सिंघल
4. मानव जीवन रक्षक के रूप में सुअर की उपयोगिता 22
   - कु. पूजा तिवारी
5. चतुर संरचनाएं 25
   - राजकुमार जैन
6. अकार्बनिक विनिमायक - एक परिपक्व तकनीक 29
   - नारेंद्र सिंह राठौर
7. मुक्त - इलेक्ट्रॉन लेजर 34
   - अरविंद कुमार
8. पेय जल में विषाणु कार्बनिक पदार्थों का मूल्यांकन 40
   - डॉ. नीता ठक्कर एवं राजश्री मुडे
9. कामिनी परमाणु भट्टी 50
   - डॉ. मधु सूदन वी. डिंगणकर
10. जैव पीड़कनाशी 53
    - डॉ. राज नारायण पांडेय एवं डॉ. प्रसून कुमार मुखर्जी
11. संपरिवर्तन विलेप 60
    - डॉ. ए. के. शर्मा

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा।

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई - 400 085

"वैज्ञानिक" का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका 'वैज्ञानिक' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर नवीनीकरण करा लें। यदि संभव हो तो आजीवन सदस्य बन जायें।

वार्षिक शुल्क

संस्थागत	व्यक्तिगत
100 रु.	50 रु.

: मुखपृष्ठ :

भारतीय उपलब्धि का प्रमाण : मई 11-13, 1998 के भारत द्वारा पोखरण में किये परमाणु विस्फोटों के दौरान बना एक क्रेटर

विज्ञान पहेलियां - अशफ़ाक अहमद 59

नोबेल पुरस्कार : किसे और किसलिए ?

1. प्रीऑन की खोज : जैव संक्रमण में एक नया सिद्धांत 65
   - कुबेर सी. भैंसा
2. जीवित कोशिकाओं में रासायनिक ईंधन : ए. टी. पी. के उत्पादन एवं विखंडन का रहस्य 70
   - डॉ. के. पी. मिश्र

कुछ रोचक जानकारियां - विजया तिवारी 74

टिप्पणियां

1. लैक्टोज मुक्त दूध उपलब्ध कराने का प्रयास 75
   - डॉ. आर. एस. सेंगर
2. भारतीय डाक विभाग के टिकट पर अंकित पारिजात वृक्ष गोरख इमली है 75
   - डॉ. श्रीकृष्ण तिवारी
3. मरु क्षेत्र के उपयोगी पौधे 77
   - एन. के. बौहरा
4. वेल्डन प्रक्रम - कुछ नये विकास 78
   - पी. के. इस्सर
5. खुबानी का तेल - औषधि भी, प्रसाधन भी 79
   - मोहन चंद्र कबड़वाल

विज्ञान कविताएं

1. भूवैज्ञानिक की जीवन शैली - डॉ. अखिलेश्वर तिवारी 69
2. विज्ञान यान - रामगोपाल परिहार 80
3. तेज-पुंज-मय, 'जय विज्ञान' - डॉ. रमाकांत पाठक 85

विज्ञान समाचार 81
- भा. प. अ. केंद्र से
- अन्य समाचार

बाल विज्ञान 86
1. शीले की भतीजी : क्लोरीन - डी. डी. डी. ओझा
2. भारतीय कोयल : एक संक्षिप्त परिचय - सुषमा नेगी

कुछ फूल : कुछ कांटे 88

समीक्षा 91

संपादकीय

'विशुद्ध परमाणु संलयन ऊर्जा : 21 वीं सदी का लक्ष्य'

मई 11-13, 1998 के दौरान भारत द्वारा पोखरण में जो परमाणु विस्फोट (अधिकतम 45 किलो टन विस्फोट लब्धि) किये गये उसने संपूर्ण विश्व में एक हलचल पैदा कर दी तथा भारतवासियों के मन में अपार खुशियां भर दीं। इसके साथ भारतीय वैज्ञानिकों एवं प्रौद्योगविदों ने इस कठिन तकनीकी को सफलता पूर्वक कार्यान्वित करके अपने आत्मविश्वास को और दृढ़ कर दिया। मुख्य पृष्ठ पर इनहीं परीक्षणों के दौरान बने क्रेटर का एक चित्र दिया गया है। इन परीक्षणों के साथ ही बहुचर्चित परमाणु परीक्षणों की रोक संबंधी व्यापक संधि (सी टी बी टी) का मामला फिर से ताजा हो गया। भारत के ऊपर कई आर्थिक प्रतिबंधों एवं परिष्कृत उपकरणों की उपलब्धता पर कठोर प्रतिबंधों की घोषणा हो गयी। नाभिकीय क्षेत्र (परिसर) में यहां तक कहा गया कि यह विश्व डिप्लोमैसी की असफलता रही। क्योंकि 1991 में अमरीका तथा रूस के बीच चल रहे शीत युद्ध की समाप्ति से नाभिकीय हथियारों में कमी के आसार लग रहे थे जो आज एक मिथ्या बनती दिख रही है। परंतु वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो ऐसा सोचना कुछ अधिक लग रहा है।

आखिर सी टी बी टी क्या है ? इसकी आवश्यकता क्यों है ? यह विषय एक ओर विश्व शांति एवं मानवता के पक्ष को देखता है तथा वहीं दूसरी ओर यह कुछ राजनैतिक भी है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी स्तर पर किसी शक्ति को तैयार करना एक बात है जबकि उसका उपयोग राजनैतिक हो सकता है।

पचास के दशक के अंतिम वर्षों में अमरीकी एवं रूसी वैज्ञानिकों के बीच भूमिगत नाभिकीय परीक्षणों के मॉनिटरन पर उस समय उपलब्ध वैज्ञानिक उपकरणों की क्षमताओं एवं मापन पद्धतियों पर संदेह होने के कारण मतभेद रहा। फलस्वरूप वे दोनों 1963 में एक मर्यादित परमाणु परीक्षण रोक संधि के लिए सहमत हुए जिसमें भूमिगत परीक्षणों को अलग रखा गया। इसके अंतर्गत वायुमंडल एवं भूमिगत जल में परीक्षणों की स्पष्ट रोक लगायी गयी। हालांकि 1974 तक भूमिगत परीक्षण चलते रहे परंतु फिर एक अन्य संधि - 'थ्रेशोल्ड टेस्ट बैन ट्रीटी' के आधार पर इन परीक्षणों की क्षमता/लब्धि को 150 किलोटन सीमित कर दिया गया।

इस दिशा में हुए प्रयासों में जुलाई-अगस्त 1958 में जेनेवा में हुई बैठक महत्वपूर्ण है, जिसमें ध्वनि तरंगों, जलदाब जनित (हाइड्रोस्टेटिक) तरंगों, भूकंपीय तरंगों के अभिलेखन (रिकॉर्डिंग), रेडियो सक्रिय डेबरिस के मॉनीटरन, जल, वायु एवं भूमिगत परीक्षणों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा हुई और एक दस्तावेज बनाया गया। इस चर्चा में शामिल थे अमरीका, रूस, चैकोस्लोवाकिया, पोलैंड, रोमानिया, ब्रिटेन, फ्रांस और कनाडा। इस बैठक में तैयार दस्तावेज के आधार पर 31 अक्तूबर 1958 में जेनावा में, परीक्षणों पर रोक लगाने हेतु, राजनैतिक बातचीत की शुरूआत हुई। उल्लेखनीय है कि भूकंपीय मापन क्षमताओं पर 1997 तक कुछ न कुछ विवाद रहा जब एक व्यापक संधि सी टी बी टी पर सहमति हुई। हालांकि इसका मसौदा 10 सितंबर 1996 को, जनवरी 1994 में निरस्त्रीकरण हुई जोरदार बहस तथा आस्ट्रेलियाई प्रयासों के बाद, संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल एसेंबली में, पारित कर दिया गया था। इसके बाद 22 सितंबर 1997 को क्लिंटन प्रशासन ने सी टी बी टी के मसौदे को सेनेट के पास पुष्टि के लिए भेज दिया। एक अमरीकी वैज्ञानिक पत्रिका "फिजिक्स टुडे" के अनुसार सी टी बी टी की पुष्टि अमरीका के बड़े हित में बतायी गयी। क्योंकि इसके अंतर्गत अमरीका अपनी किसी भी वर्तमान प्रोलिफरेंट संबंधी गतिविधियों में प्रयुक्त संसूचन नेटवर्क (क्षमताओं) को नहीं छोड़ेगा। जबकि उसे अब विश्व के अन्य सेंसर नेटवर्कों से भी आंकड़े मिलेंगे और सदस्य राज्यों का सहयोग भी।

यहां पर विश्व की महान शक्तियों द्वारा समय-समय पर किये गये परीक्षणों का कुछ विवरण असंगत नहीं लगता। अमरीका ने अपने पहले परीक्षण (16 जुलाई 1945) से अंतिम परीक्षण (23 सितंबर 1992) तक 1030

विस्फोट, रूस ने 29 अगस्त 1949 एवं 24 अक्तूबर 1990 के बीच 715 विस्फोट, फ्रांस ने 12 फरवरी 1960 से 27 जनवरी 1996 तक 210 विस्फोट, इंग्लैंड ने 3 अक्तूबर 1952 से 26 नवंबर 1991 के दौरान 45 विस्फोट तथा चीन ने 16 अक्तूबर 1964 से 29 जुलाई 1996 तक 45 परमाणु विस्फोट किये। इसके साथ सी टी बी टी के कुछ मुख्य प्रावधानों का उल्लेख यहां पर करना उचित रहेगा।

* किसी भी प्रकार का नाभिकीय हथियार परीक्षण विस्फोट या अन्य नाभिकीय विस्फोटों को न करना और इसके ज्यूरिडिक्शन एवं नियंत्रण वाली जगहों पर किसी अन्य को परमाणु विस्फोट न करने देना।
* वियेना में सी टी बी टी संस्था का संस्थापन करना जिसमें राज्य पार्टी कॉन्फ्रेंस, कार्यकारी परिषद तथा तकनीकी सचिवालय होंगे।
* अंतर्राष्ट्रीय मॉनीटरन केंद्र की स्थापना करना जो संधि पालन पर निगरानी रखेगा।
* यह संधि असीमित समय से लिए लागू रहेगी। कोई भी सदस्य राष्ट्र छः महीनों के अग्रिम नोटिस पर अति असामान्य परिस्थितियों में इससे अलग हो सकता है। बशर्ते कि सी टी बी टी के कारण उसके राष्ट्रीय चरम हित खतरे में पड़ रहे हों।

इसमें संदेह नहीं कि सी टी बी टी मानवता को नाभिकीय हथियारों से मुक्त करने की दिशा में एक बड़ा कदम है। परंतु देश की सुरक्षा का मुद्दा भी कम महत्व का नहीं कहा जा सकता है।

ऐसा माना जा रहा है कि भविष्य में परमाणु संलयन ऊर्जा जो अपने आप में अधिक सुरक्षित, रेडियो प्रदूषण विहीन एवं असीमित है, की प्राप्ति के लिए नाभिकीय विखंडन युक्ति (ऊष्मीय नाभिकीय विस्फोट) का प्रयोग नहीं होगा। यह सी टी बी टी के बंधन से बाहर रहेगा क्योंकि यह एक विशुद्ध परमाणु संलयन होगा। इस कार्य के लिए प्रबल लेजर पुंज के उपयोग होने की बड़ी संभावना है। लिवरमोर (कैलीफोर्निया) में अमरीकी राष्ट्रीय प्रज्वलन सुविधा जो एक विशाल लेजर कॉम्प्लेक्स स्वरूप है, तथा फ्रांस की लेजर मैगाजूल सुविधा (बोरडॉक्स) में कार्य प्रगति के चरम बिंदु पर पहुंच गये हैं। "वैज्ञानिक" के, 1985 के अप्रैल-जून के अंक में इसे 21वीं सदी का ऊर्जा स्रोत बताया गया था। इस दिशा में हो रहे शोध एवं तकनीकी विकास के आधार पर ऐसे संकेत मिलने लगे हैं कि आने वाली शताब्दी में यह स्रोत उपलब्ध हो पायेगा। अमरीका ने संलयन ऊर्जा की दिशा में प्रयासों को इस कदर बढ़ा दिया है ताकि वह अगली श्रेणी (generation) के ऊर्जा संयंत्र को सर्वप्रथम तैयार कर सके। अन्य चार परमाणु शक्तियों के साथ जर्मनी तथा जापान ने भी इस दिशा में वांछित क्षमताएं हासिल कर ली हैं। इस कार्य में प्रयुक्त होने वाला सबसे शक्तिशाली लेजर, नियोडिमियम ग्लास लेजर है जो अमरीका की लारेंस लिवरमोर प्रयोगशाला में कार्यरत है।

परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग से संबंधित अगस्त 1955 में जेनेवा में आयोजित एक संगोष्ठी के दौरान अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ. होमी भाभा ने परमाणु रिएक्टरों की तत्कालिक स्थिति एवं प्रगति के आधार पर हालांकि यह कहा था कि संलयन रिएक्टर लगभग 20-25 वर्षों में कार्यरत हो जायेंगे। परंतु इस दिशा में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे वैज्ञानिक प्रयासों की सफलता एवं प्रकृति की बाधाओं के देखते हुए हमें 21वीं सदी में ही इसकी आशा रखनी होगी।

●

प्रस्तुत अंक वर्ष 1998 का जनवरी-जून अंक (संयुक्तांक) है जिसमें वर्ष 1997 की डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता में पुरस्कृत लेखों के साथ-साथ अन्य लेख दिये गये हैं। हमारे पूर्व के प्रयासों के आधार पर इस बार हमें जो प्रतिक्रियाएं मिली हैं वे हमारे जागरूक पाठकों की ओर संकेत करती हैं। किन्हीं अपरिहार्य कारणों से "वैज्ञानिक" के प्रकाशन में विलंब चल रहा है। हम इसे कम करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। आपके सहयोग की आशा बराबर रहेगी।

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख्र प्रतियोगिता (1997) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त लेख्र

जेनेटिक क्लोनिंग : वरदान या अभिशाप

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
होमी भाभा विज्ञान शिक्षण केंद्र,
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान,
मानख्रुर्द, मुंबई - 400 088

क्लोनिंग द्वारा 'डॉली' नामक मेमने की उत्पति ने जहाँ एक ओर जीवविज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति का उदाहरण प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर इससे विश्व मानव समाज उद्वेलित हो उठा है। 'क्लोनिंग' क्या है ? 'डॉली ' की क्लोनिंग किस प्रकार की गयी ? इस तकनीक की सफलता से कौन-कौन से प्रश्न उठ ख्रड़े हुए हैं ? इसके संभाव्य लाभ या हानियां क्या हैं ? - इन सब पर चर्चा की गयी है इस लेख्र में।

कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान या उपलब्धियां विज्ञान जगत के साथ ही सामान्यजन में भी चर्चा एवं कुतूहल का विषय बन जाती हैं, क्योंकि उनका आयाम बृहत्तर होता है तथा मानव संस्कृति एवं सभ्यता से उसके सरोकार बड़े गहरे जुड़े होते हैं। जीवविज्ञान में चार्ल्स डार्विन का विकासवाद या वाटसन एवं क्रिक द्वारा डी. एन. ए. संरचना की ख्रोजें सचमुच मील के पत्थर सदृश्य उपलब्धियां हैं। 1997 की शुरुआत में कुछ इसी तरह की वैज्ञानिक उपलब्धि से पूरा विश्व चौंक सा गया था जब 27 फरवरी 97 की 'नेचर' पत्रिका में जेनेटिक क्लोनिंग विधि से 'डॉली' नामक मेमना उत्पन्न कर लेने की ख्रबर सामने आयी। इंग्लैंड की एडिनबर्ग स्थित रोजलिन इंस्टीट्यूट के इयान विल्मट की टीम ने यह उपलब्धि हासिल की है। बीसवीं सदी के मध्य में परमाणु बम की खोज के बाद यदि किसी वैज्ञानिक घटना ने इतने व्यापक तौर पर लोगों को उद्वेलित किया है तो वह जेनेटिक क्लोन 'डॉली' ही है। जीव विज्ञान में 1953 में डी. एन. ए. संरचना की खोज के बाद यह सबसे बड़ी सफलता है।

प्राकृतिक प्रजनन -

हर जीव अपनी वंशावली को बनाये रख्रने के लिए प्राकृतिक रूप से संतानोत्पत्ति करता है, जिसे प्रजनन कहते हैं। इसमें नर एवं मादा से उनके जननांगों द्वारा उत्पन्न जननिक कोशिकाएं जिन्हें शुक्राणु एवं डिंब कहते हैं, की भूमिका रहती है। ये कोशिकाएं अर्धसूत्री विभाजन से उत्पन्न होती हैं तथा इनमें गुणसूत्रों की संख्या आधी होती है। मनुष्य कोशिका में 46 गुण सूत्र होते हैं जिनमें डी. एन. ए. होते हैं, जो आनुवंशिक गुणों के वाहक होते हैं तथा जिनमें जीवन के लिए आवश्यक सूचनाएं रासायनिक संकेतों के रूप में संनिहित होती हैं। दोनों पक्षों से आने वाली कोशिकाएं आपस में संलयित होकर युग्मज (जाइगोट) का निर्माण करती हैं। इसी युग्मज से कोशिका विभाजन द्वारा भ्रूण एवं कालांतर में पूर्ण जीव का निर्माण होता है। प्राकृतिक प्रजनन में संतति में मातृ एवं पितृ पक्ष से आधी-आधी संख्या में गुणसूत्रों का योगदान रहता है। इस तरह एक निषेचित कोशिका से मनुष्य जैसे विकसित एवं बुद्धिजीवी प्राणी का निर्माण होता है, जिससे शरीर में लगभग दस हजार अरब कोशिकाएं होती हैं। एक प्रश्न जो वैज्ञानिक मन को काफी समय से कुरेदता रहा है वह यह है कि यदि एक ही कोशिका से संपूर्ण प्राणी विकसित हुआ है तो शरीर की किसी भी कोशिका में जीवन की संपूर्ण आनुवंशिक सूचना होनी चाहिए। आख्रिर जननिक कोशिका ही जीवसृष्टि के लिए क्यों आवश्यक है ?

विगत सात दशकों से पौधों के लिए यह ज्ञात था कि प्रजनन के लिए बीज आवश्यक नहीं है। ऊतक संवर्धन (टिश्यू कल्चर) द्वारा पेड़ पौधों की अनेक उन्नतशील प्रजातियां विकसित की जाती रही हैं। किसी पौधें की टहनी तोड़कर नये पौधे का रोपण प्रकारांतर से क्लोनिंग ही है, क्योंकि नये पौधे के सारे आनुवंशिक गुण एक ही पौधे से आते हैं। प्राणियों में एक ही प्राणी की किसी कोशिका से क्या उसी तरह का नया प्राणी संभव है यह वैज्ञानिक समुदाय के लिए चुनौती भरा प्रश्न रहा है।

प्राणियों में क्लोनिंग की पृष्ठभूमि :

चालीस के दशक में जर्मन जीवविज्ञानी हैंस स्पेमैन ने कुछ रोचक प्रयोग किये थे। उन्होंने मेंढक के युग्मनज को दो भागों में बांट दिया तथा पाया कि जिस भाग में केंद्रक था वह विकसित होकर टैडपोल बना जब कि दूसरा केंद्रकरहित भाग नष्ट हो गया। एक दूसरे प्रयोग में उन्होंने एक युग्मनज के केंद्रक को केंद्रकरहित युग्मनज में प्रतिस्थापित कर दिया तथा पाया कि उससे भी विकसित होकर प्रौढ़ प्राणी बन गया। भ्रूण विकास पर कार्य करके उन्होंने पाया कि भ्रूण का विशेष हिस्सा ही किसी अंग विशेष के निर्माण के लिए उत्तरदायी होता है। यानि आंख के निर्माण के लिए उत्तरदायी कोशिका ही आंख का निर्माण करेगी। ध्यान रहे कि उस समय तक डी. एन. ए. संरचना तथा जीन के स्तर पर जानकारी नहीं थी। सिर्फ इतना ज्ञात था कि केंद्रक में ही आनुवंशिक सूचना होती है। बाद के वर्षों में कोई खास अनुसंधान इस दिशा में नहीं हुआ। 1970 के दशक में कैंब्रिज विश्वविद्यालय के जॉन गर्डन ने इस दिशा में प्रयास किया। उन्होंने मेंढक की त्वचा से कोशिका लेकर उसका केंद्रक एक केंद्रकहीन डिंब में प्रत्यारोपित कर दिया। इससे टैडपोल तक विकास हुआ किंतु प्रौढ़ मेंढक नहीं बन सका। सही अर्थों में यह क्लोनिंग की दिशा में एक सार्थक प्रयास था। इस सफल शुरुआत के बाद इस क्षेत्र में अनुसंधान कार्य को वांछित गति मिली। 1986 में इंग्लैंड के कैंब्रिज के स्टीन विलैंडसन द्वारा भेड़ में भ्रूण का क्लोन बनाने का प्रयास सफल रहा। उन्होंने एक 16 कोशिकीय भ्रूण की कोशिकाओं को अलग करके उन्हें भेड़ की केंद्रकरहित डिंब कोशिकाओं में प्रत्यारोपित कर दिया। इस प्रकार डिंब कोशिकाएं विभाजित होकर भ्रूण का निर्माण करने लगीं तथा समान आनुवंशिक गुणों से युक्त सोलह भ्रूण प्राप्त हुए। वर्ष 1991 में अमरीका में विस्कोन्सिन यूनिवर्सिटी की टीम ने खरगोश के भ्रूण का क्लोन बनाने में सफलता पायी। इस दिशा में एक स्तनधारी प्राणी का पूर्ण क्लोन प्राप्त करने का श्रेय एडिनबर्ग स्थित रोजलिन इंस्टीट्यूट के इयान विल्मट की टीम को जाता है।

डॉली की उत्पत्ति :

डॉली अपनी मां की क्लोन यानि अनुकृति है। आनुवंशिक तौर पर हम इसे कार्बन कॉपी कह सकते हैं। इसका जन्म बिना गर्भाधान के हुआ है। जाहिर है इसका कोई पिता नहीं है क्योंकि इसकी उत्पत्ति में पिता की कोई भूमिका नहीं है। 'डॉली' नामक यह मेमना अपनी प्रथम मां का प्रतिरूप है जिसका डी. एन. ए. इसे प्राप्त है तथा तकनीकी तौर पर इसकी तीन मांएं हैं। इयान विल्मट द्वारा संपादित प्रयोग का सार संक्षेप हम इस प्रकार समझ सकते हैं (देखें चित्र-1)। विल्मट ने छः वर्षीय भेड़ के थन से कोशिका लेकर उसका केंद्रक अलग कर दिया। अब केंद्रकरहित डिंब एवं प्रथम भेड़ के केंद्रक को एक पेट्रिडिश में रखकर हल्का विद्युत स्पंद दिया जिससे दोनों संयुक्त होकर एक कोशिका बन गये। यह एक तरह से युग्मनज सदृश्य हो गया। उचित पोषण एवं परिस्थितियां प्रदान करने पर यह युग्मनज विभाजित होकर 8 कोशिकीय ब्लास्टोसील बन गया। अब इसे एक तीसरी भेड़ के गर्भाशय में प्रतिरोपित कर दिया। प्रतिरोपण के 5 माह बाद यह विकसित होकर 'डॉली' के रूप में पैदा हुई। इस सफलता से वैज्ञानिक उत्साहित एवं रोमांचित हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि अब वे मनुष्य का क्लोन बनाने के काफी निकट पहुंच चुके हैं भले ही इसमें कुछ एक वर्ष लगें। सारी चिंता इसी बात को लेकर है। इस घोषणा से बुद्धिजीवियों, धर्मगुरुओं

चित्र-1: इन्सान का क्लोन संभवत: कुछ ऐसा होगा।

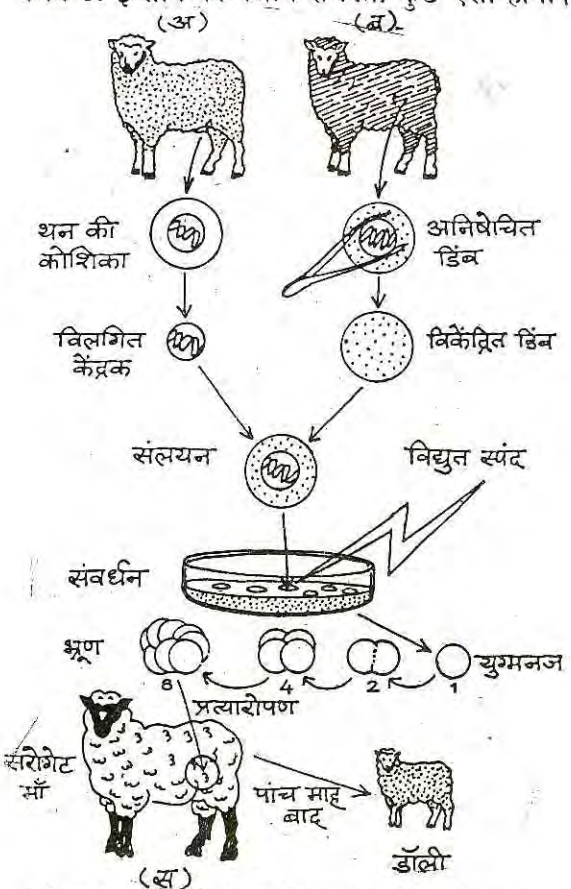

चित्र-2 : डॉली की उत्पत्ति का एक चित्रांकन।

उसकी इच्छा है। हमें इस कार्य क्षेत्र में दखल नहीं देना चाहीए। वेटिकन सहित तमाम धार्मिक केंद्रों ने अपनी चिंता व्यक्त की है। समाजशास्त्रियों का मानना है कि से समाज में विसंगती पैदा होगी तथा मानवीय गरिमा एवं मूल्यों को आघात पहुंचेगा। उन्होंने अति उत्साहित वैज्ञानिकों द्वारा ऐसे प्रयास की संभावना को खत्म करने के लिए ह्यूमन क्लोनिंग को प्रतिबंधित करने की मांग की है। यूरोपियन यूनियन ऑफ पार्लियामेंट ने विश्वव्यापी प्रतिबंधों की मांग की है। इंग्लैंड में पहले ही मानव क्लोनिंग का निषेध है। घटना की गंभीरता को देखते हुए अमरीकी राष्ट्रपती बिल क्लिन्टन ने 'बायोएथिक्स एडवाइजरी कमीशन' को इसका मूल्यांकन कर अपनी संस्तुति देने को कहा। कमीशन ने तन महीने के अंदर सर्वसम्मति से अमरीका में मानव क्लोनिंग पर प्रतिबंध लगाने की संस्तुति की है। फिर भी विश्व के अन्यान्य देशों में इस प्रयास की संभावना बनी है।

क्लोन एवं उसके विविध पक्ष :

यह आम धारणा कि किसी प्राणी का क्लोन पूर्णता: कार्बन कापी होगी, वस्तुत: सही नहीं है। बाह्य आकारिकी के साथ व्यवहारिक पक्ष तथा बौद्धिक स्तर प कोई क्लोन कतना समान होगा इसका निर्धारण प्रकृति एवं जीव के मध्य अंत:क्रिया (इटरएक्शन) से होता है। व्यक्ति कैसा बनेगा ? बुद्धिमान का क्लोन बुध्दिमान ही होगा यह साधिकार नहीं कहा जा सकता। नरेंद्रनाथ से स्वामी विवेकानंद तथा मोहनदास गांधी बनने की प्रक्रियी नितांत जटिल है। यानि व्यक्तित्व निर्माण एक गूढ़ प्रक्रिया है जिसे क्लोनिंग से निर्धारित नहीं किया जा सकता। एक बात स्पष्ट हो गयी है कि भेड़ के थन की एक कोशिका में जीवन विर्माण की सारी आनुवंशिक सूचना है। किंतु यहां यह देखने वाली बात है कि डॉली सामान्य जीवन जीती है या नहीं। चूंकि उसे अपनी छ: वर्षीय मां से कम तो नहीं हो जायेगा ? या भविष्य में कोई आनुवंशिक या संक्रामक रोग का संकट तो नहीं आ जायेगा ? यदि हम मनुष्य का क्लोन बनायें तो उसके माता-पिता कौन होंगे ? समाज क्या उसे स्वाकार करेगा ? उसके साथ

तो नहीं हो जायेगा ? या भविष्य में कोई आनुवंशिक या संक्रामक रोग का संकट तो नहीं आ जायेगा ? यदि हम मनुष्य का क्लोन बनायें तो उसके माता-पिता कौन होंगे ? समाज क्या उसे स्वीकार करेगा ? उसके साथ कानून या विधि का व्यवहार कैसा होगा ? क्या वह बड़ा होकर किसी का क्लोन होना स्वीकार करेगा ? उसके मानवीय मूल्य एवं गरिमा क्या अक्षुण्ण रह पायेंगे ? यदि उसने अपनी उत्पत्ति से, क्षुब्ध होकर, कोर्ट में मानहानि का दावा किया तो विधि का क्या दृष्टिकोण होगा ? इस प्रकार क्लोनिंग से सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, विधि संबंधी एवं दार्शनिक पक्ष जुड़े हैं । आनेवाली समस्याओं को मात्र एक उदाहरण से समझा जा सकता है । कुछ वर्ष पूर्व अमरीका में एक निःसंतान दंपत्ति स्वाभाविक तौर पर संतानोत्पत्ति में सक्षम नहीं थे क्योंकि पत्नी गर्भधारण करने में अक्षम थी । उन्होंने कानूनी संविदा के तहत् एक किराये की मां (सरोगेट) की मदद ली । डॉक्टरों ने दंपत्ति के शुक्राणु एवं डिंब लेकर प्रयोगशाला में निषेचित कर किराये की मां के गर्भ में प्रतिरोपित कर दिया । संविदा में यह उल्लेख था कि उक्त मां एक निश्चित रकम के एवज में दंपत्ति के लिए गर्भधारण करेगी तथा जन्म के बाद बच्चे को दंपत्ति को सौंप देगी । किंतु उक्त मां बाद में अपने वायदे से मुकर गयी तथा बच्चा सौंपने से इनकार कर दिया । मामला निचली अदालत में गया जहां फैसला बच्चे को दंपत्ति को सौंपने के पक्ष में हुआ किंतु सरोगेट ने उच्चतम न्यायालय में अपील की, जहां सुनवाई के बाद निचली अदालत के फैसले को उलट दिया गया। कोर्ट ने कहा कि चूंकि किराये की मां ने ही बच्चे को गर्भ में धारण किया तथा जन्म दिया अतः नैसर्गिक न्याय (नेचुरल जसटिस) के अनुसार वास्तविक मां वही है तथा उससे बच्चे को उसकी इच्छा के विपरीत छीना नहीं जा सकता । ऐसे जटिल मामलों में न्याय-अन्याय के मध्य की डोर बड़ी नाजुक होगी तथा न्याय-अन्याय को परिभाषित कर पाना नितांत कठिन होगा ।

जेनटिक क्लोनिंग की उपादेयता :

तमाम विरोधाभासों के बीच वैज्ञानिकों का एक बड़ा वर्ग क्लोनिंग का हिमायती है जो चाहता है मानव के कल्याण हेतु इस तकनीक को आगे बढ़ाया जाय, क्योंकि इससे कई लाभ संभाव्य हैं । प्राकृतिक रूप से अक्षम निःसंतान दंपत्ति इस विधि से संतान प्राप्त कर सकेंगे । अंग प्रत्यारोपण के लिए यह विधि बड़ी ही सहायक होगी । इसमें उसी व्यक्ति की कोशिका से आवश्यक अंग का निर्माण कर प्रतिरोपित किया जा सकेगा जो शत-प्रतिशत सटीक होगा । अस्थिमज्जा (बोन मैरो) प्रतिरोपण में भी बड़ी मदद मिल सकेगी । ऐसे माता-पिता जो किसी आनुवंशिक रोग से पीड़ित हैं तथा नहीं चाहते कि उनकी संतान भी इस पीड़ा को झेले वे क्लोनिंग से रोग मुक्त संतान पा सकेंगे क्योंकि रोग के लिए जिम्मेदार जीन को ठीक करना संभव हो जायेगा । ऐसे बच्चे का भी रोग मुक्त क्लोन बन सकेगा जो दुर्भाग्य से एड्स से संक्रमित हो गया हो । ऐसे में माता-पिता को एक भावनात्मक संतोष प्राप्त होगा । जनसंख्या नियंत्रण के इस दौर में एक संतान की नीति (वन चाइल्ड नॉर्म) पर जोर है किंतु दंपत्तियों को मानसिक शांति नहीं रहती कि न जाने कब उनके लाड़ले के साथ कोई अनहोनी हो जाय । ऐसे में वे बच्चे के शरीर की कोशिका को द्रव नाइट्रोजन में सुरक्षित रख सकेंगे तथा किसी दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु की स्थिति में उस कोशिका से बच्चे का हूबहू क्लोन प्राप्त कर सकेंगे । संभवतः इससे उन्हें आत्मतोष मिल सकेगा ।

हालांकि समाजशास्त्रियों एवं आम जनता की चिंता को अकारण नहीं कहा जा सकता । किंतु इतना परेशान होने की भी आवश्यकता नहीं है । कोई भी तकनीक स्वयं में वरदान या अभिशाप नहीं होता बल्कि यह उन हाथों पर निर्भर है जिन्हें इसका उपयोग करना है । जहां तक दुरुपयोग होने की आशंका है तो बेशक इसके लिए कुछ दिशा-निर्देश एवं कानून बनाये जाने चाहिए । निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि हमें अनावश्यक चिंता छोड़कर हर नये ज्ञान का स्वागत करना चाहिए तथा उसका विवेकपूर्ण उपयोग सुनिश्चित करना चाहिए ।

❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1997) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त लेख

ज्वार-भाटा से बिजली

परेश र. वैद्य
परमाणु ईंधन प्रभाग
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

गैर पारंपरिक ऊर्जा के स्रोतों के बारे में एक मुख्य आपत्ति यह रही है कि उनसे मिलने वाली ऊर्जा की मात्रा कोई अधिक नहीं है तथा उसकी क्षमता भी उतनी नहीं होती कि बिजली की ग्रिड में ऐसे स्रोतों को शामिल किया जा सके। इस आक्षेप से ऊर्जा का एक स्रोत मुक्त है - वह है समुद्र में उठते ज्वार और भाटे से उत्पन्न बिजली। यह स्रोत एक केंद्रित स्रोत बन सकता है और संसार में कुछ जगहों पर इस प्रकार से बने बड़े विद्युत केंद्र ग्रिड से जुड़े भी हैं। भारत में भी ऐसे तीन भौगोलिक स्थल हैं जहां ज्वार-भाटा से बिजली उत्पन्न करना संभव है। उनमें से कच्छ की खाड़ी में प्रस्तावित केंद्र का तकनीकी सर्वेक्षण भी हो गया है। उस पर काम शुरु होने की प्रतीक्षा है। इस दृष्टि से इस नये विषय में भारतीय वैज्ञानिकों की भी रुचि है। ऊर्जा के इस स्रोत की कार्य प्रणाली, क्षमता, समस्याएं इत्यादि पहलुओं पर प्रस्तुत लेख में काफी सरलता के साथ चर्चा की गयी है।

मोटे तौर पर ज्वार से मिलने वाली ऊर्जा की कार्य प्रणाली जल विद्युत की प्रणाली जैसी ही होती है। दोनों में पानी ऊपर की सतह से नीचे की सतह की ओर जाता है और पानी की स्थैतिज ऊर्जा का रूपांतर गतिज ऊर्जा में होता है, जिसका उपयोग टरबाईन चलाकर बिजली उत्पन्न करने में किया जाता है। जल विद्युत में पानी को ऊपर का स्थान उस क्षेत्र की भौगोलिक रचना के कारण मिलता है, जबकि ज्वार में ऊपर चढ़ता पानी रोज ही ऊपर चढ़ता है और रोज ही भाटे के समय नीचे उतरता है। ज्वार-भाटे का कारण सूर्य और चंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण है। अतः परोक्ष रूप से यह सौर एवं चंद्र ऊर्जा का ही रूप है। इन दोनों आकाश पिंडों और पृथ्वी के बीच परस्पर गुरुत्वाकर्षण का बल लगता है। समुद्र का पानी कुछ दुर्बल रूप से ही पृथ्वी से बंधा हुआ है, इसलिए गुरुत्वाकर्षण बल के असर में आ कर वह सूर्य अथवा चंद्र की ओर ऊंचा उठता है। पूर्णिमा और अमावस्या को सूर्य, चंद्र और पृथ्वी लगभग एक ही रेखा पर आ जाते हैं इसलिए उन दिनों दुगुना ऊंचा ज्वार आता है।

जल विद्युत और ज्वार में मुख्य अंतर पानी की स्थैतिज ऊर्जा का है। जल विद्युत के बांध से आता पानी कई सौ मीटर ऊपर से आता है और टरबाईन पर गिरता है; जबकि ज्वार बिजली में ज्वार और भाटे की सतहों की ऊंचाई के अंतर का उपयोग किया जाता है, जो 5 से 15 मीटर तक होता है। इससे प्राप्त ऊर्जा की मात्रा तो कम होती ही है, साथ-साथ कुछ खास किस्म की टरबाइनों की आवश्यकता पड़ती है जो कम जलदाब की ऊंचाई (Head of Water) में भी काम कर सकें। जिस स्थान पर ज्वार और भाटे के बीच अंतर 3 मीटर से कम हो उसे ज्वार ऊर्जा की प्राप्ति के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता।

भारत में उपयुक्त स्थान :

यों तो हमारे देश का समुद्री किनारा बहुत लंबा है। परंतु महज समुद्र का किनारा होना पर्याप्त नहीं है, साथ में स्थानीय भूगोल ऐसा होना चाहिए कि चढ़ते हुए पानी को कुछ समय तक संचित किया जा सके। इस दृष्टि से जहाँ खाड़ी (Gulf) हो वही उचित स्थान होगा। भारत में पश्चिम में कच्छ और खंभात एवं पूर्व में सुंदरबन की खाड़ियाँ योग्य मानी गयी हैं (चित्र-1)। इन स्थानों पर ज्वार की ऊँचाई भी ज्यादा है। तीनों स्थान कर्कवृत के पास हैं जहाँ गर्मी के दिनों (मई-जून)

चित्र 1 : भारत में ज्वार - ऊर्जा के संभावित स्थान

में साल के सबसे ऊंचे ज्वार आते हैं। उस समय ज्वार और भाटे के बीच कच्छ में 8 मीटर (25 फीट), खंभात की खाड़ी में 11 मीटर (35 फीट) और हुगली नदी के मुखप्रदेश में 6 से 7 मीटर (18 से 22 फीट) फर्क होता है, जो विश्व के ज्वार-विद्युत के अन्य स्थानों के लगभग समान है। परंतु सिर्फ मई-जून के आँकड़े न देखकर वर्ष भर का औसत देखना ज्यादा व्यवहारिक है। चित्र-2 में पश्चिम भारत के उस क्षेत्र के किनारे के लिए ऐसा औसत दर्शाया गया है। आम तौर पर ज्वार के स्तर की ऊँचाई खाड़ी के आकार से तय होती है, ज्वार की ऊँचाई के अतिरिक्त यह देखना भी जरूरी है कि पानी का विस्तार कितना है। संचित पानी की मात्रा अधिक होने से उपलब्ध ऊर्जा की मात्रा भी बढ़ेगी। उपलब्ध विद्युत शक्ति (Power - P) :

$P = A.R^2$

जहाँ A = संचित पानी का क्षेत्रफल

और R = ज्वार और भाटे के बीच पानी के स्तर का अंतर।

पानी रोकने के लिए बाँध बनाने हेतु स्थान की भौगोलिक और भूस्तरीय योग्यता, और बिजली की ग्रिड से दूरी आदि महत्वपूर्ण पहलू हैं। उदाहरण के लिए

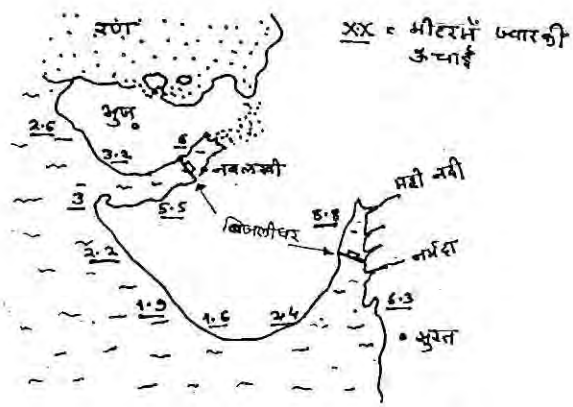

चित्र 2 : पश्चिम भारत के किनारे पर ज्वार-भाटे की ऊंचाई

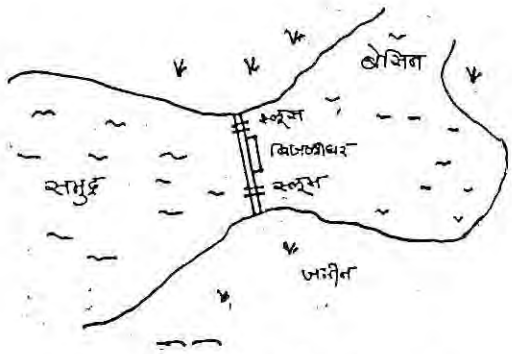

चित्र 3 : एकल बेसिन व्यवस्था

खंभात की खाड़ी से 6000 मेगावाट से भी ज्यादा ऊर्जा मिल सकती है, किंतु खाड़ी चौड़े मुंह वाली होने के कारण बहुत लंबे बाँध की आवश्यकता होगी जिसमें अरबों रुपया खर्च होगा। इसलिए भारत सरकार ने एक 'मार्गदर्शी संयंत्र' (Pilot Plant) के लिए कच्छ की खाड़ी को चुना है, जहाँ पर लगभग 600 मेवॉ. ऊर्जा पैदा करना संभव है।

ज्वार-विद्युत की विशेषताएं :

जल-विद्युत के बाँध में पानी हमेशा भरा रहता है और उसका स्तर प्रायः स्थिर मान सकते हैं। मगर ज्वार के बारे में ऐसा नहीं है। पानी का स्तर ऊँचा-नीचा होता रहता है, क्योंकि कभी ज्वार आता है और कभी

तालिका 1 : बेसिन की विविध योजनाओं की तुलना

प्रकार	ऊर्जा प्राप्ति का		मानक*	ऊर्जा* उत्पादन	उर्जा की* लागत
	समय	अवधि			
एक बेसिन	भाटे के समय	4 से 7 घंटे (दो बार)	100	100	100
एक बेसिन	ज्वार और भाटा के समय	3-4 घंटे (चार बार)	161	124	129
एक बेसिन (पंपिंग के साथ)	जब चाहें	कम से सम (2 घंटे)	163	142	110
दो बेसिन	सतत	– – –	98	53	184
दो बेसिन	रुक रुक कर	जब चाहें	122	53	220

**एक बेसिन - एक चक्र को मानक (= 100) मानकर तुलना की गयी है ।*

तालिका 2 : पश्चिम भारत के दो स्थानों की तुलना

	खंभात (एक बेसिन)	कच्छ	
		विकल्प-1 (एक बेसिन)	विकल्प-2 (दो बेसिन)
ज्वार की औसत ऊंचाई (मीटर में)	6.8	5.3	5.3
बांध की लंबाई (किमी. में)	32	31	5
पानी की गहराई (मीटर में)	27	13	13
बेसिन का क्षेत्रफल (वर्ग किमी.)	1751	538	278
स्थापित क्षमता (मेवॉ.)	5510	1182	600
वार्षिक उत्पादन (अरब इकाई)	11580	2985	1610

**यह विकल्प भविष्य के लिए पसंद किया गया है ।*

भाटा । इसलिए उसमें से बिजली उत्पन्न करने के लिए एक विशेष तरीका अपनाया गया है । इसे समझने के लिए हम चलते हैं उस बाँध पर जिसके एक तरफ़ समुद्र और दूसरी ओर छिछले पानी का विस्तार है जहाँ ज्वार के समय पानी जमा होता है । ऐसी एक जगह चित्र-3 में दिखायी गयी है । इस तरह बने कृत्रिम तालाब को 'बेसिन' कहा जाता है । 'बेसिन' को समुद्र से एक मोटे बाँध से अलग किया जाता है और उस बाँध में दो नाले होते हैं जिन्हें 'स्लूस' द्वारा खोला या बंद किया जा सकता है ।

यहां खड़े होकर अगर हम चढ़ते या उतरते पानी के स्तर का समय के साथ आलेख बनायें तो चित्र-4 में दिये आलेख जैसा होगा । हर साढ़े बारह घंटों में इस आलेख का पुनरावर्तन होता है क्योंकि दिन में दो बार आने वाले ज्वारों के बीच साढ़े बारह घंटों का अंतर होता है । मान लीजिए कि सुबह 8 बजे से पानी चढ़ना शुरु होता है और तब समुद्र के पानी को 'बेसिन' में जाने देने के लिए 'स्लूस' दरवाजे खोल दिये जाते हैं । इससे तालाब में पानी भरता रहता है । बेसिन के तालाब में पानी भरने की क्रिया तब तक चलेगी जब तक समुद्र में भाटा न शुरु हो जाय । भाटे के समय पानी को वापस न जाने देने के लिए 'स्लूस' बंद कर दिये जाते हैं । दोपहर करीब 2 बजे स्थिति यह होगी कि 'बेसिन' में पानी का स्तर समुद्र के स्तर से ऊँचा होगा । इसका लाभ उठाकर बिजली पैदा की जाती है । उस हेतु बाँध के बीचोंबीच एक 'बिजलीघर' बनाया गया है । यहां

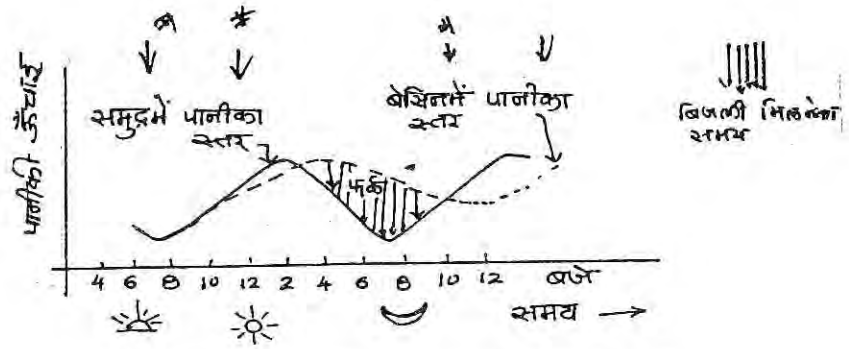

चित्र 4 : समुद्र और बेसिन में पानी की सतहों की ऊंचाई

जल-टरबाईन और विद्युत-जेनेरेटर हैं। तालाब से समुद्र की ओर तेजी से बहते हुए पानी को इन टरबाइनों से गुजरना होगा और बिजली उत्पन्न होगी।

जब तक कृत्रिम तालाब का स्तर समुद्र से उतना ऊपर रहेगा जितना टरबाईन चलाने के लिए आवश्यक हो, तब तक बिजली मिलती रहेगी। यह शाम से 8 बजे तक हो सकता है। तब तक दूसरे ज्वार का समय हो गया होगा और बेसिन खाली करना रोक कर भरने की प्रक्रिया शुरु हो जायेगी, अर्थात बिजली घर से पानी का जाना रोक कर 'स्लूस' के दरवाजे खोल दिये जायेंगे।

इस तरह दिन में दो बार बिजली मिल सकती है। कुछ ज्यादा बिजली पाने के लिए ऐसा भी किया जाता है कि दोपहर 12 बजे ही पंप चलाकर समुद्र से पानी उठाकर बेसिन में डाला जाय, जिससे बेसिन का जल-स्तर और ऊँचा हो जाय। इससे थोड़ी सी बिजली के खर्च से बाद में अधिक बिजली वापस मिलती है। इन दोनों तरीकों से बिजली तभी मिलती है जब भाटा शुरु होता है। इसकी कार्यदक्षता 22% रहती है। अगर ज्वार चढ़ना शुरु हो तभी से बिजली घर चला दें तो दक्षता 19% हो जाती है, मगर बिजली प्राप्त करने का समय थोड़ा सा बढ़ता है। कार्यदक्षता के ये आंकड़े कुछ कम लगते हैं, मगर डीज़ल-जेनेरेटर और गैस-टरबाईन भी इतनी ही दक्षता से चलते हैं। फ़र्क है तो यह है कि यहां पर बिना कोई ईंधन जलाये ऊर्जा मिलती है।

तालिका 3 : विश्व में अन्य जगहों पर ज्वार-ऊर्जा की क्षमता

देश	ज्वार ऊर्जा (मेवॉ.)
उत्तर अमरीका	2900
दक्षिण अमरीका	6000
इंग्लैंड	1700
फ्रान्स	11000
रुसी गणराज्य	15000
भारत	4 से 8000

निरंतरता के उपाय :

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह बिजली दिन में कुछ समय ही मिलती है, बाकी समय में बिजली-घर बंद पड़ा रहता है। साथ ही, ज्वार आने का समय बदलते समय के कारण बिजली मिलने का समय भी बदलता रहता है। इन बातों से ऐसी ऊर्जा के व्यावहारिक उपयोग में कठिनाई अवश्य आती है। परंतु इस कमी को दूर करने का सबसे आसान उपाय है कि बिजलीघर को ज्वार और भाटे, दोनों समय चलाया जाय। अर्थात् तालाब भरता हो तब और खाली होता हो तब भी बिजली प्राप्त की जाये। इसे 'दोहरा-चक्र' या 'दुगुन-आवर्तन' तरीका कहते हैं। इसके लिए खास किस्म की ऐसी टरबाइनों की जरुरत पड़ती है जो दोनों दिशाओं में कार्य करें। इन्हें उत्क्रमणीय (Reversible) टरबाईन्स कहते हैं, और ये महंगी होती हैं। इस पद्धति से बिजली

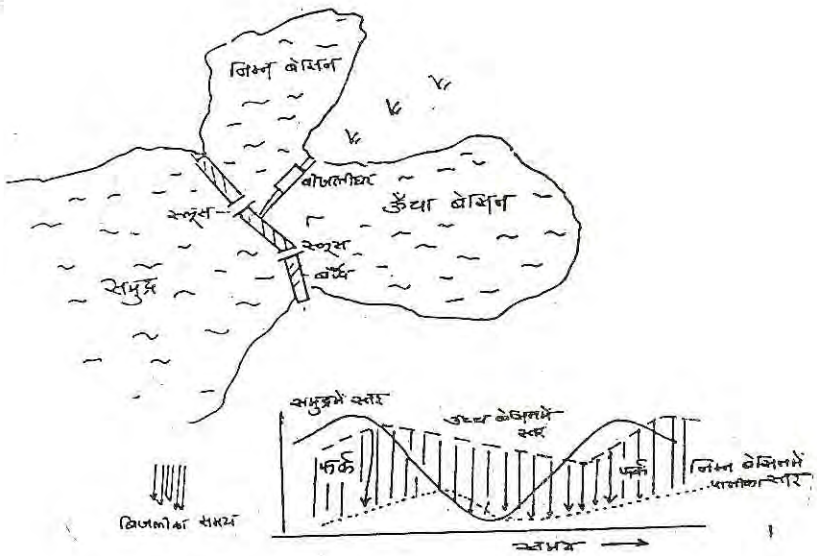

चित्र 5 : दुगुन बासिन और उसमें बिजली मिलने की अवधि

मिलने का समय दुगुना तो नहीं होता मगर बढ़ता अवश्य है। दो बार 7 घंटे के बजाय इसमें 4 बार चार-चार घंटे बिजली मिलेगी।

कुछ लोग यह पसंद करते हैं कि समुद्र के सामने एक नहीं दो बेसिन बनाये जायें। विविध तरीकों से इन्हें जोड़ा जाय ताकि ऊर्जा पाने की अवधि बढ़ाई जा सके। दो बेसिनों के जोड़ने का एक तरीका चित्र-5 में दिखाया गया है। बिजली घर यहाँ दो 'बेसिनों' के बीच में है, इसीलिए एक बेसिन में जल-स्तर ऊँचा रखा जायेगा और दूसरे में नीचा। जब समुद्र में पानी का स्तर बढ़ता है उसी वक्त ऊँचे बेसिन को भरा जाता है और भाटा शुरु होते ही 'स्लूस' बंद करके इस बेसिन को समुद्र से अलग कर देते हैं। उसी समय ऊंचे बेसिन से पानी को बिजली घर से होते हुए निम्न बेसिन की ओर छोड़ा जाता है। चित्र के नीचे के हिस्से में दिये आलेख से स्पष्ट होता है कि उच्च और निम्न बेसिनों के पानी के स्तरों का अंतर बहुत हद तक अचल रखा जा सकता है। उससे बिजली हमेशा ही मिलती रहेगी, हालांकि उसकी मात्रा थोड़ी कम जरूर होगी। दो बेसिनों का भरने और खाली करने के क्रम को ठीक से नियोजित करने से ऐसा भी संभव हो सकता है कि जब चाहें तब बिजली पा सकें। इस स्थिति में बिजली घर का ग्रिड में शामिल होना आसान हो जाता है क्योंकि ऐसा बिजली घर ग्रिड में जब ज्यादा 'लोड' हो और बिजली की अधिक जरूरत हो तब बिजली की आपूर्ति कर सकता है। ऐसी योजना की लागत अधिक नहीं है मगर उत्पादन कम होने से प्रति इकाई लागत बढ़ जाती है। तालिका-1 में विविध विकल्पों के खर्च और उत्पादन की तुलना की गयी है। उससे यह पता चलता है कि बिजली पाने के समय के ऊपर हमारा नियंत्रण जितना बढ़ता है उतना बिजली का खर्च बढ़ता है और ऊर्जा की मात्रा कम हो जाती है। यह स्वाभाविक भी है। कच्छ की प्रस्तावित परियोजना में दो बेसिनों वाला केंद्र 600 मेवॉ. शक्ति देगा, जब कि एक बेसिन के विकल्प से 1180 मेवॉ. बिजली मिल सकती थी (तालिका-2)।

विशिष्ट प्रकार की टरबाइनें :

यांत्रिक ऊर्जा का बिजली में परिवर्तन करने के लिए टरबाईन की आवश्यकता तो ज्वार-भाटे से विद्युत

प्राप्त करने में भी है। मगर ज्वार-विद्युत के लिए प्रयुक्त होने वाली टरबाइनें जलविद्युत की टरबाइनों से थोड़ी भिन्न होती हैं। टरबाईन के संदर्भ में पानी के बहने की दिशा दोनों प्रकारों में अलग है। जलविद्युत में पानी ऊपर से आता है और टरबाईन को स्पर्शक (tangent) दिशा में लगा कर आगे जाता है। ज्वार बिजली केंद्र में पानी का स्तर इतना ऊँचा नहीं होता कि ऊपर से गिर सके। अतः पानी टरबाईन की अक्ष की दिशा से प्रवेश करता है। ऐसी टरबाइनों को अक्षीय टरबाइन्स कहते हैं। इनमें मुख्य तीन प्रकार हैं; i) बल्ब-टरबाईन, ii) ट्यूब टरबाईन, और iii) कैप्लान टरबाईन।

इनमें से बल्ब-टरबाईन उत्क्रमणीय है। इसका उपयोग बेसिन से समुद्र अथवा समुद्र से बेसिन में पानी आने-जाने की प्रक्रिया के माध्यम से बिजली प्राप्त करने में किया जा सकता है। साथ ही जरूरत पड़ने पर बिजली दे कर इनसे पंप का काम भी लिया जा सकता है (चित्र-6)। ये टरबाइनें तीन तरह के काम करती हैं:-

1. टरबाईन का कार्य,
2. उल्टी दिशा में पानी चढ़ाना (पंप का कार्य),
3. नाले के रूप में (पानी को अपने में से बहने देना : orifice का कार्य)।

टरबाइनों को समुद्र के पानी में हमेशा रहना पड़ता है इसलिए क्षारण की समस्या तो रहेगी ही। फ्रान्स ने अपनी टरबाइनों में दो मिश्र धातुओं - उच्च क्रोमियम इस्पात और एल्यूमीनियम ब्रॉंज़ का प्रयोग किया है। भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड ने भी हिमाचल प्रदेश और अन्य पहाड़ी इलाकों में लघु-बिजली घर स्थापित करने के लिए ऐसी टरबाइनों का निर्माण किया है जो पानी के अल्प स्तरों में भी काम करती हैं। थोड़ा सुधार-बदलाव करके इन्हें ज्वार आधारित बिजली घर के योग्य बनाया जा सकता है।

1974 में 'नेशनल कमेटी फॉर साइंस एंड टेक्नोलॉजी' (NEST) तथा 'केंद्रीय जल एवं ऊर्जा आयोग' (CWPC) जो अब 'केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण' (CEA) कहलाता है, ने ज्वार भाटे से विद्युत उत्पादन के विषय में अध्ययन किया था। 1975 में स्टेन्फोर्ड विश्वविद्यालय के श्री ई. एम. विल्सन के सहयोग से यह निर्णय लिया गया कि इस विषय में अध्ययन अब पुणे के पास खड़कवासला स्थित 'केंद्रीय जल एवं शक्ति अनुसंधान केंद्र' (CWPRS) करेगा। इस संस्था ने कच्छ की खाड़ी के लिए पांच विकल्प प्रस्तुत किये। केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण ने इनमें से कच्छ की खाड़ी के विकल्प को स्वीकार करते हुए जनवरी 1982 से केंद्र एवं राज्य सरकारों तथा 13 अन्य संस्थाओं के सहयोग से खाड़ी का संपूर्ण भूसर्वेक्षण, भूस्तरीय सर्वेक्षण, समुद्र विज्ञान संबंधी अध्ययन, ग्रिड व्यवस्था पर्यावरण, पारिस्थितिकी आदि विषयों पर कार्य प्रारंभ कर दिया गया है। इसके मुख्य पहलू निम्नवत हैं :

- भूसर्वेक्षण के बाद गुजरात राज्य सिंचाई विभाग ने 1400 वर्ग किमी. जमीन को समतल बनाया। 100 वर्ग किमी. का भूस्तरीय सर्वेक्षण हुआ।
- 'लघुबंदरगाह सर्वेक्षण संस्थान' ने खाड़ी के कुछ हिस्सों के विस्तृत विवरण वाले मानचित्र बनाये। ज्वार-भाटे से संबंधित कुछ और अवलोकन भी किये गये।
- कच्छ भूकंपीय क्षेत्र है इसलिए इस विषय में कुछ जानकारी इकट्ठा करके बिजली घर और बाँध के मानचित्र बनाने वालों को दी गयी।
- बाँध और बिजली घर की संभावित जगहों पर जमीन में 50 से 100 मीटर गहराई से चट्टान और मिट्टी के नमूने लिये गये। इसमें गुजरात इंजीनियरिंग अनुसंधान संस्थान और गोवा की राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्था ने सहकार्य किया।
- पुणे के CWPRS ने बेसिन में गाद बैठने की प्रक्रिया का अध्ययन किया।

इन कार्यों में समय लगा क्योंकि कच्छ की खाड़ी एक दुर्गम इलाका है। यहां पानी भरा रहता है इसलिए छोटी नौका और लॉंच में ही काम करने जाना पड़ता है। इसके साथ-साथ वहाँ 50 से 60 किमी. प्रति घंटे की रफ्तार से तेज हवाएं चलती हैं जो नौकाओं का उपयोग भी मुश्किल कर देती हैं। बाँध बनने से पानी के बहाव की गति और दिशा बदल सकती हैं; कभी कमी ज्वार-भाटे के स्तर भी बदल सकते हैं। इसकी गणना हेतु गणितीय मॉडेलिंग प्रणाली का भी प्रयोग गया ताकि उपलब्ध बिजली की मात्रा का आर्थिक अनुमान लगाया जा सके।

ज्वार बिजली की आर्थिक व्यवहार्यता :

आर्थिक दृष्टि से ज्वार भाटा विद्युत का गणित किस ओर बैठेगा इसका अनुमान लगना कठिन कार्य है। फिर भी जब जल विद्युत 10 पैसे प्रति इकाई तथा कोयले से प्राप्त ऊष्मीय विद्युत 16 पैसे थी तब इसे 12 से 22 पैसे प्रति इकाई आंका गया था। अब तो पारंपरिक ऊर्जा ही लगभग 10 गुना महंगी हो गयी है। साथ ही जब हमें पारंपरिक ऊर्जा से गैर पारंपरिक ऊर्जा का स्थायी हल ढूंढना है तो आर्थिक गणित को तो परे रखना ही होगा।

कच्छ के 600 मेवॉ. केंद्र से लगभग 160 करोड़ यूनिट वार्षिक विद्युत उत्पादन आंका गया है जो देश के कुल उत्पादन (80,000 मेवॉ.) का 1 प्रतिशत भी नहीं है परंतु इसे नजर अंदाज भी नहीं किया जा सकता है। विचारणीय बात यह है कि जो प्रकल्प आठवीं योजना के अंत तक पूरा होना था वह अभी तक ठीक से प्रारंभ भी नहीं हुआ है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण :

प्राय: ऊर्जा के प्रत्येक स्रोत के साथ कोई न कोई पर्यावरणीय समस्या रहती ही है। फिर भी ज्वार विद्युत में शायद ऐसी कोई समस्या पैदा न हो। इसमें किसी प्रकार का ईंधन न होने के कारण वायु प्रदूषण तो नहीं होगा। जल विद्युत प्राप्त करने में, बाँध बनाने के कारण काफी भूखंड जल मग्न हो जाता है। यहाँ तो ज्वार बिजली घर बनेगा ही ऐसी जगह जहां हमेशा ही पानी भरता रहा हो। अत: जंगल डूबने अथवा आदिवासियों के विस्थापन की समस्या भी नहीं है। फिर भी पानी रोकने से उत्पन्न पारिस्थितिक प्राकृतिक हलचल पर प्रभाव पड़ेगा और वातावरण के तापमान में वृद्धि हो सकती है। पानी में प्राणवायु की भी कमी हो जायेगी। बढ़े तापमान एवं प्राणवायु की कमी का क्या परिणाम होगा उसकी कल्पना अभी नहीं की जा सकती। इसके गहन अध्ययन के लिए एक विशेष कार्य दल बनाया गया है।

इसके विपरीत बेसिन में बाँध बनाने से नया जल मार्ग खुल जाता है। जल मार्ग से आस पास के कुछ शहरों के बीच की दूरी कम हो जाती है। बेसिन में ज्वार भाटा जल स्तर में बदलाव में कमी से बंदरगाह (कंडला) की उपयोगिता और बढ़ जायेगी।

विश्व में अन्य ज्वार बिजली केंद्र :

यहां पर यह जानना महत्त्वपूर्ण होगा कि क्या विश्व में इस तरह के ऊर्जा केंद्र कहीं और बनाये गये हैं। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि ऐसा एक ऊर्जा केंद्र (144 किवॉ. शक्ति) चार दशक पहले चीन ने तलियांग प्रांत में स्थापित किया था। उसके बाद 1966 में फ्रांस ने रान्स नदी के मुख पर एक बड़ा बिजली घर बनाया। यह केंद्र, ज्वार ऊर्जा की सफलता का प्रतीक रहा है। 240 मेवॉ. के इस केंद्र के लिए आधा किमी. लंबे बांध में 19 हज़ार किवॉ. के बल्ब-टरबाइनों की 24 इकाइयाँ बैठायी गयी हैं। उल्लेखनीय है कि इस योजना के प्रकल्प के समय खनिज तेल के दाम ज्यादा नहीं थे और ज्वार से प्राप्त बिजली का आर्थिक दृष्टि से अनुमोदन करना मुश्किल था।

ज्वार की सबसे कम ऊंचाई वाला विद्युत केंद्र रूस ने 'किस्लाया गुबा' नामक स्थान पर 1969 में बनाया है। वहाँ पानी सिर्फ 3.9 मीटर ऊँचा उठता है। ब्रिटेन और कनाडा में भी ज्वार-ऊर्जा के क्षेत्र में अध्ययन होता रहा है। विश्व में 35 स्थान ऐसे बताये गये हैं जो ज्वार आधारित बिजली केंद्र के योग्य हैं। इन सबकी कुल क्षमता 30 से 60 हजार मेवा. है जो कोई कम नहीं है और इस क्षमता का जितनी जल्दी हो सके लाभ उठाना चाहिए। ऊर्जा का यह एक ऐसा प्रकार है जो वर्षा या अकाल पर आधारित नहीं और न ही इसमें कोयला लगता है जिसे बिजली घरों तक पहुंचाने के लिए रेलवे के वैगनों की कमी का सामना करना पड़े। खनिज तेल की तरह इसके दाम OPEC देश अपनी मनमानी से बढ़ा भी नहीं सकते और न ही 50 या 100 सालों में इसके खतम होने का डर है। कभी न थमने वाली यह ऊर्जा वास्तव में ही *'यावच्चंद्र दिवाकरौ'*- जब तक सूरज चाँद रहेंगे तब तक रहने वाली ऊर्जा है। इसे जल्दी प्रयोग में लाया जाय यही मानवता के लिए उचित है। ❑❑❑

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1997) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त लेख

मंगल अभियान : कुछ उपलब्धियां

विनिता सिंघल
सी 4 जी / 103 ए,
जनकपुरी, नयी दिल्ली 110 058

सूर्य से लगभग 22 करोड़ 80 लाख किमी. दूरी पर स्थित लाल ग्रह मंगल पर जीवन की संभावना ने अंतरिक्ष अभियानों की दिशा में एक नया अध्याय खोल दिया है। 'पाथ फाइंडर' द्वारा भेजी गयी सूचनाओं से यह तो स्पष्ट हुआ कि मंगल ग्रह पर पानी था तथा वहां का पर्यावरण बहुत कुछ पृथ्वी जैसा ही है। इन जानकारियों से उत्साहित होकर अमरीका तथा रूस ने मिलकर 2005 तक के लिए योजनाएं बना डाली हैं। प्रस्तुत लेख में अभी तक के मंगल ग्रह अभियानों से मिली जानकारियों पर कुछ प्रकाश डाला गया है। 'वैज्ञानिक' के अंतरिक्ष विज्ञान विशेषांक (अक्तूबर-दिसंबर 1997, 29/4) में मंगल ग्रह से संबंधित दो लेख प्रकाशित किये गये थे। जानकारियों की संपूर्णता हेतु उन्हें भी पाठक पढ़ लें।

प्राणियों की मौजूदगी को लेकर लिखी जाने वाली कहानियों के कारण मंगल ग्रह सदैव चर्चा का विषय रहा है। एक समय था जब एच. जी. वेल्स के 'वार ऑफ द वर्ल्ड' ने तहलका ही मचा दिया था लेकिन 1965 में मंगल ग्रह पर भेजे गये अंतरिक्ष यान मैरिनर-4 ने इन सारी बातों को कपोल कल्पना सिद्ध कर दिया। उस समय खगोल विज्ञानियों के मतानुसार मंगल ग्रह की सतह पर न केवल नहरों का जाल फैला था बल्कि वहां पृथ्वी की तरह मौसम थे। कुछ खगोलशास्त्रियों ने वहां के बदलते मौसम को देख कर वहां वनस्पति भी मौजूद होने का दावा किया। एक अमरीकी खगोलशास्त्री पर्सिवल लॉवेल मंगल ग्रह को लेकर इतने सम्मोहित थे कि उन्होंने अपनी एक वेधशाला ही बना डाली थी जहां से मंगल ग्रह को देख-देख कर उन्होंने अनगिनत नक्शे बना डाले थे जिनमें फैले रेखाओं के जाल को देख कर यह माना गया कि शायद वहां विशाल नदियां हैं और उनसे नहरें निकाली गयी हैं। इससे मंगल ग्रह पर जीवन मौजूद होना तो सिद्ध होता ही था साथ ही यह भी सिद्ध होता था कि मंगलग्रहवासी बुद्धिमान भी थे। लेकिन मंगल ग्रह को भेजे गये अंतरिक्ष यानों ने जो चित्र भेजे उन्होंने इन सब तथ्यों को झुठला दिया।

वर्ष 1962 में तत्कालीन सोवियत संघ ने मार्स-1 नामक अंतरिक्ष यान मंगल के अध्ययन के लिए भेजा जो अपने अभियान में सफल नहीं हो सका। इन्हीं दिनों अमरीका के मैरिनर-4, मैरिनर-6 तथा मैरिनर-7 अंतरिक्ष यान मंगल ग्रह के निकट जाकर उसके चित्र लेने में सफल रहे। इन चित्रों से स्पष्ट हो गया कि मंगल की सतह पर भी चांद की तरह केवल गड्ढे हैं। रेत के विशाल मैदान हैं, चट्टानें हैं, दरारें और गहरी खाइयां हैं और इतना ही नहीं, विशाल ज्वालामुखी भी हैं। वहां की जमीन का रंग लाल गेरुआ है और धूल गुलाबी है। वहां का वायुमंडल पृथ्वी के वायुमंडल की अपेक्षा बहुत झीना है और उसमें मुख्य रूप से कार्बन डाइऑक्साइड मौजूद है। वहां की कुल हवा का 96.5 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड, 1.8 प्रतिशत आण्विक नाइट्रोजन, 1.5 प्रतिशत ऑर्गन, 0.1 प्रतिशत आण्विक ऑक्सीजन और लेशमात्र कार्बन मोनो-ऑक्साइड, निऑन, क्रिप्टान, जिनॉन व पानी की वाष्प है। सबसे निराशाजनक बात यह थी

उल्का पिंड में देखी गयी जीवाणु जैसी संरचनाएं

कि पृथ्वी से हरियाली जैसा दिखायी देने वाला भाग मंगल की ऊंची नीची सतह है जो वहां का मौसम बदलने के साथ, हवा के कारण कभी मिट्टी से ढक जाता है तो कभी दिखायी देने लगता है। बिना मिट्टी का यह भाग पृथ्वी से टेलीस्कोप से देखने पर हरियाली का भ्रम पैदा करता था। इस प्रकार वहां जीवन के लिए आवश्यक किसी भी अवस्था के कोई प्रमाण नहीं मिले।

अभी ये तथ्य पूरी तरह स्थापित भी नहीं होने पाये थे कि कुछ ऐसे प्रमाण सामने आये जिनसे एक बार फिर मंगल ग्रह पर जीवन होने की संभावना जागी। वर्ष 1971 में, मंगल की कक्षा में भेजे गये मैरिनर-9 ने कुछ ऐसे चित्र भेजे जिनमें कुछ ऐसी घुमावदार नालियों जैसी रेखाएं थीं जो नदियों के सूख जाने से ही बनती हैं। अब सवाल यह उठा कि प्राचीन काल में मंगल ग्रह पर पानी मौजूद था तो क्या उस समय वहां आदि जीवन भी था ? कुछ ऐसी ही संभावनाएं सोवियत संघ के अंतरिक्ष यानों मार्स-2, मार्स-3, मार्स-4 तथा मार्स-5 द्वारा भेजी गयी सूचनाओं ने भी जगायीं। जब ये यान ग्रह का सर्वेक्षण कर रहे थे तब वहां आंधी चल रही थी। इससे वैज्ञानिकों को लगा कि अवश्य ही वहां कुछ ऐसे तत्व होने चाहिए जो पृथ्वी पर भी हैं। एक बार फिर मंगल ग्रह पर जीवन पाये जाने की आशा जागी। इसी आशा के सहारे वैज्ञानिक आज तक मंगल ग्रह पर जीवन ढूंढ रहे हैं। इसके लिए खगोलविदों, रसायनज्ञों, जीवविज्ञानियों और इंजीनियरों ने मिल कर दो अंतरिक्ष प्रोब – वाइकिंग-1 और वाइकिंग-2 बनाये।

कुछ ही महीनों में इन यानों ने मंगल ग्रह के बारे में अनेक सूचनाएं भेजीं जो पहले प्राप्त सूचनाओं से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण थीं। इन सूचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण सूचना थी मंगल के ध्रुवीय क्षेत्र में कार्बन डाइऑक्साइड की मौजूदगी। इसी से वैज्ञानिकों के इस विश्वास को बल मिला कि मंगल ग्रह पर कुछ ऐसे तत्त्व अवश्य मौजूद हैं जो जीवन के लिए आवश्यक होते हैं और हमारी पृथ्वी पर भी विद्यमान हैं। लेकिन इसे प्रमाणित करने के लिए ठोस प्रमाणों की आवश्यकता थी। पिछले वर्ष अमरीका के नेशनल एयरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन अर्थात 'नासा' के अनुसंधानकर्ताओं के एक दल ने मंगल ग्रह से लायी गयी चट्टानों के टुकड़ों में जीवन के भौतिक और रासायनिक संकेत पाये जाने की घोषणा की है जो उनमें बैक्टीरिया जैसे सूक्ष्मजीव के जीवाश्मों के रूप में मौजूद थे।

पृथ्वी पर अंटार्कटिका के एलन हिल्स नामक क्षेत्र से प्राप्त चट्टान के बारे में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि लगभग एक करोड़ साठ लाख वर्ष पहले कोई विशाल क्षुद्र ग्रह, मंगल ग्रह से टकराया होगा और चट्टानों के असंख्य टुकड़ों में से कोई एक टुकड़ा मंगल के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो सूर्य की परिक्रमा करते-करते पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से खिंच कर पृथ्वी पर आ गिरा होगा। वैज्ञानिकों के अनुसार यह टुकड़ा लगभग 13,000 वर्ष पहले पृथ्वी पर गिरा होगा इस टुकड़े को ए. एल. एच. 84001 का नाम दिया गया है। इस टुकड़े में उन्हें जीवन के संकेत के रूप में कार्बोनेट गोलिकाएं मिलीं जिनमें पॉलीसाइक्लिक हाइड्रोकार्बन यौगिक मौजूद थे। इतना ही नहीं इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से देखने पर इनमें सूक्ष्मजीवों जैसी रचनाएं भी दिखायी दीं। वैज्ञानिकों का दावा है कि ये डेढ़ करोड़ वर्ष पूर्व मंगल ग्रह पर मौजूद

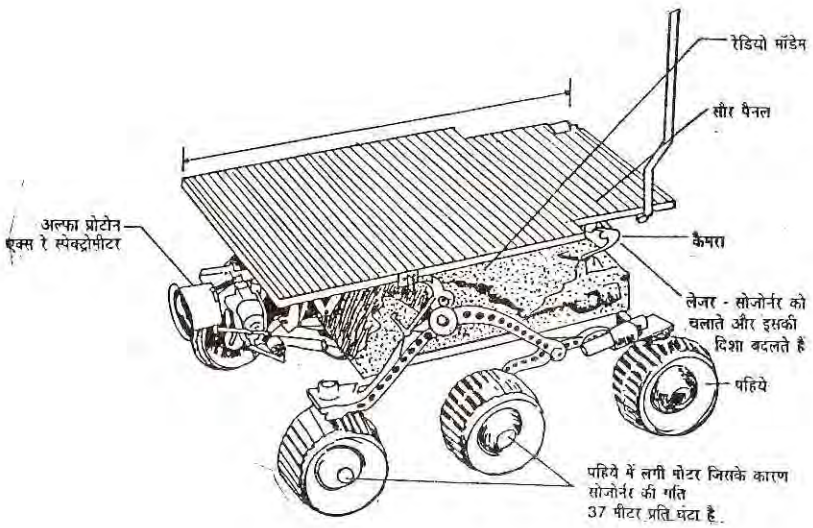

मंगल ग्रह की खोज खबर लेने वाला सोजोर्नर

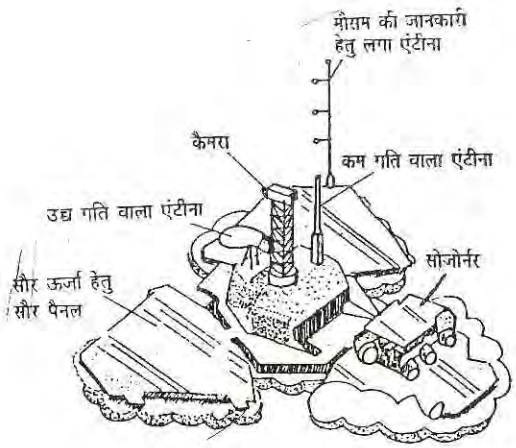

पाथ फाइंडर

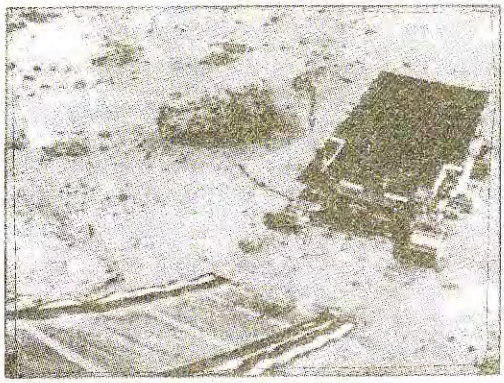

'योगी' की ओर बढ़ता सोजोर्नर

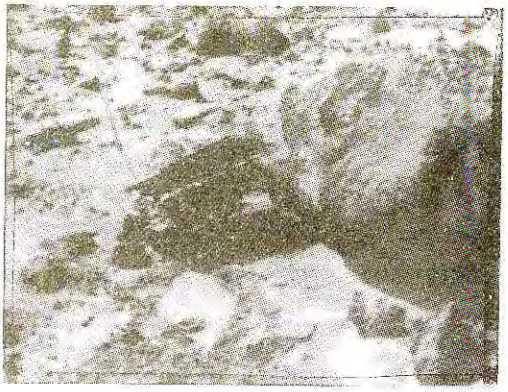

'योगी' में फंसा सोजोर्नर का पहिया

सूक्ष्मजीवों के जीवाश्म हैं। चूंकि पृथ्वी पर जीवाणुओं के जो जीवाश्म मिलते हैं उनमें भी कार्बोनेट पाया जाता है क्योंकि जब मृत्यु के बाद उनका शरीर अपघटित होता है तब कार्बनिक अणु बनते हैं। इसके अतिरिक्त कार्बोनेट गोलिकाओं में बिल्कुल वैसे ही मैगनेटाइट के कण मौजूद हैं जैसे कि अनेक भौमिक जीवाणुओं में पाये जाते हैं। इनमें मौजूद ^{13}C और ^{12}C का अनुपात भी इनमें जैविक उद्भव का समर्थन करता है।

हालांकि सभी इन तथ्यों से सहमत नहीं थे। प्रसिद्ध अमरीकी पुराजीव वैज्ञानिक विलियम शॉफ का कहना है कि मंगल पर जीवन की संभावना सिद्ध करने के लिए पक्के प्रमाण जरूरी हैं क्योंकि पॉलीसाइक्लिक हाइड्रोकार्बन तो ग्रहों की धूल और उल्का पिंडों में भी मिलते हैं इसलिए उन्हें जीवन का प्रमाण नहीं माना जा सकता। उनका यह भी कहना है कि यह भी संभव है कि सूक्ष्मजीवों जैसी रचनाएं कीचड़ और खनिजों से ही बनी हों। कुछ और वैज्ञानिकों का भी मानना है कि केवल कार्बनिक पदार्थ की उपस्थिति को जीवन का लक्षण नहीं माना जा सकता। उल्का पिंडों में काफी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ होता है लेकिन उसे कभी जैव मूल का नहीं माना गया।

कुछ भी हो, नासा के वैज्ञानिकों को आगे भी प्रमाण मिलने की आशा बनी रही। इसीलिए उन्होंने आगे भी मंगल अभियान जारी रखने की योजना बनायी जिसके अंतर्गत नासा की जेट प्रोपल्सन प्रयोगशाला ने 4 दिसंबर 1996 को मार्स पाथ फाइंडर नामक अंतरिक्ष यान मंगल की खोज खबर लेने के लिए भेजा। 6 जुलाई 1997 का वह महत्वपूर्ण दिन आया जब सूरज की किरणों ने मंगल की लाल धरती पर एक छोटी सी गाड़ी को घूमते देखा। सोजोर्नर नामक यह रोबोट गाड़ी पाथ फाइंडर अपने साथ लेकर गया था। अंतरिक्ष विज्ञान के इतिहास में यह पहली घटना थी जब कोई गाड़ी किसी दूसरे ग्रह पर घूम रही थी। अमरीका के केप केनावरल से छोड़ा गया यह यान पहले भेजे गये यानों से कई तरह से भिन्न था। जैसे कि पहले के यानों की अपेक्षा इस पर काफी कम खर्च आया और उनकी अपेक्षा यह कम समय अर्थात् 11 माह की जगह 7 माह में ही गंतव्य तक पहुंच गया।

पाथ फाइंडर को वहां उतरने में सुविधा हो इसके लिए उसमें रिट्रोरॉकेटों के स्थान पर एयर बैग लगाये गये थे। 4 जुलाई को मंगल ग्रह के वायुमंडल में पहुंचने के बाद यान ग्रह के एरेस वेलिस बेसिन नामक स्थान पर दो तीन उछाल खाकर जैसे ही रुका इन एयर बैग्स की हवा निकल गयी और पंखुड़ी के आकार के तीन सौर पैनल

खुल गये जिससे इसके कैमरों तथा अन्य वैज्ञानिक उपकरणों ने काम करना शुरू कर दिया। पाथ फाइंडर द्वारा भेजे गये चित्रों में जहां बड़े-बड़े पहाड़, चट्टानें, रंग-बिरंगी शिलाएं तथा लहरों के निशान साफ दिखायी दे रहे थे वहीं वैज्ञानिकों को हवा निकला एयरबैग भी दिखायी दिया जो सोजोर्नर के मार्ग में बाधा बन सकता था। जल्दी ही उन्होंने इस बाधा को दूर कर दिया। लेकिन अभी समस्याओं का अंत नहीं हुआ था। वैज्ञानिकों ने देखा कि सोजोर्नर और पाथ फाइंडर के बीच संपर्क स्थापित नहीं हो रहा है। यह एक गंभीर समस्या थी जिसे हल करना बहुत जरूरी था क्योंकि वे सोजोर्नर को केवल पाथ फाइंडर के माध्यम से ही निर्देश दे सकते थे। इस समस्या के समाधान में लगभग एक दिन का समय लगा और 6 जुलाई को सोजोर्नर ने वैज्ञानिकों के निर्देशानुसार काम करना शुरू कर दिया।

पाथ फाइंडर में दो बहुत ही शक्तिशाली कैमरे लगाये गये थे। इनमें दो लेंस और 24 फिल्टर लगे हैं जिनकी सहायता से रंगीन स्टीरियोस्कोपिक चित्र लिये जा सकते हैं। ये अब तक मंगल ग्रह के सैकड़ों चित्र पृथ्वी को भेज चुके हैं। पाथ फाइंडर में लगे कैमरों की एक विशेषता यह भी है कि ये 360 डिग्री पर घूम कर चित्र ले सकते हैं। ये कैमरे दूर तक देखने की क्षमता रखते हैं।

सोजोर्नर में लगे यंत्रों में सबसे महत्वपूर्ण यंत्र है 'अल्फा प्रोटॉन एक्स रे स्पेक्ट्रोमीटर' जो चट्टानों और मिट्टी की जांच कर उनका रासायनिक विश्लेषण करने में सक्षम है। इसका संचालन 19 करोड़ किलोमीटर दूर नासा के नियंत्रण कक्ष में बैठे वैज्ञानिकों के हाथ में है। जिस पहली चट्टान का इस स्पेट्रोसीटर ने अध्ययन किया उसे 'बार्नेकिल बिल' का नाम दिया गया। उसमें पृथ्वी पर पायी जाने वाली चट्टानों की तरह क्वार्ट्ज की मात्रा बहुत अधिक थी। ये क्वार्ट्ज समुद्र के किनारे मिलने वाली रेत में मौजूद क्वार्ट्ज से काफी मिलता-जुलता है। इस चट्टान में क्वार्ट्ज के अलावा फेल्डस्पार और ऑर्थोपायरॉक्साइड भी पाये गये हैं। ये दोनों ही तत्त्व पृथ्वी पर चट्टानों में पाये जाने वाले सामान्य खनिजों में से हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मंगल का भूगर्भीय इतिहास चांद की अपेक्षा पृथ्वी से अधिक समानता रखता है। इसका रासायनिक संघटन पृथ्वी पर पाये गये उन ए. एल. एच. 84001 उल्का पिंडों के समान था जिनके बारे में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वे मंगल ग्रह पर अरबों वर्ष पूर्व संघटित हुए होंगे।

'बार्नेकिल बिल' के बाद सोजोर्नर गाड़ी एक और बहुत बड़ी चट्टान की ओर बढ़ी जिसका आकार किसी सोते हुए भालू के समान था। 'योगी' नामक इस चट्टान का अध्ययन करते हुए गाड़ी का एक पहिया चट्टान में फंस गया। कुछ समय के लिए वैज्ञानिक चिंतित अवश्य हो गये लेकिन जल्दी ही वे उच्च गति वाले एंटीना के जरिए पाथ फाइंडर से पुनः संपर्क बनाने में सफल हो गये। उन्होंने एंटीना द्वारा ऐसे संदेश भेजे जिनसे सोजोर्नर का पहिया स्वतः ही चट्टान से बाहर निकल आया और उसने फिर से कार्य करना आरंभ कर दिया।

पाथ फाइंडर द्वारा भेजे गये चित्रों में यद्यपि जीवन के कोई लक्षण नहीं मिले हैं लेकिन कुछ प्रमाण ऐसे अवश्य मिले हैं जिनसे यह पता चलता है कि वहां कभी पानी अवश्य रहा होगा। चित्रों के विश्लेषण करने वाले वैज्ञानिकों का मत है कि मंगल ग्रह के एरेस वैलिस बेसिन में कभी इतनी प्रलंयकारी बाढ़ आयी होगी जैसी बाढ़ से पृथ्वी पर भूमध्य सागर बना था। एक अनुमान के अनुसार सैकड़ों किमी. में फैले बाढ़ के इस पानी के बहाव की रफ्तार 275 किमी. प्रति घंटा रही होगी। चट्टानों का एक तरफ झुकाव और उनके पीछे प्रस्तर कणों की कतारें, बाढ़ की दिशा बताती हैं जो संभवतः दक्षिण पश्चिम दिशा से आयी होगी। वैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि मंगल पर यह बाढ़ एक अरब से तीन अरब वर्ष पूर्व आयी होगी। लेकिन सवाल यह उठता है कि यदि बाढ़ आयी थी तो मंगल पर पानी होना चाहिए था, वह पानी कहां गया ? पाथ फाइंडर और सोजोर्नर से मिली सूचनाओं के आधार पर वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मंगल की उत्तरी ध्रुवीय टोपी में तथा मंगल की सतह के नीचे पानी जमा होना चाहिए। यह भी हो सकता है कि सतह से काफी नीचे गहराई में कहीं तरल जल भी हो।

'अंगारक ', 'भौम', 'धरासुत' या 'मंगल'

लाल ग्रह 'मंगल' सूरज से दूरी के हिसाब से देखा जाय तो चौथा ग्रह है । यह पृथ्वी की तुलना में काफी छोटा है। इसका व्यास लगभग 6,800 किमी. है । यह सूर्य से लगभग 22 करोड़ 80 लाख किमी. दूर है । यह जितने समय में सूर्य की एक बार परिक्रमा पूरी करता है उतने ही समय में पृथ्वी लगभग दो चक्कर पूरे कर लेती है । मंगल को अपनी धुरी पर एक बार घूमने में 24 घंटे और 37.5 मिनट का समय लगता है अर्थात् मंगल का एक दिन 24 घंटे और 37.5 मिनट का होता है । मंगल के एक वर्ष में 668.6 दिन होते हैं । मंगल ग्रह के दो चांद हैं- फोबोस और डेमोस । फोबोस 22 किमी. और डेमोस केवल 12 किमी. चौड़ा है । फोबोस 7 घंटे 39 मिनट में मंगल की एक परिक्रमा पूरी कर लेता है । इनके अतिरिक्त सौर मंडल का सबसे बड़ा ज्वालामुखी भी मंगल ग्रह पर ही है । ओलिंपस मोर्स नामक

मंगल की ऊबड़-खाबड़ सतह

यह ज्वालामुखी 27 किमी. ऊंचा है और इसका व्यास 550 किमी. है । पृथ्वी की तरह मंगल ग्रह के भी बर्फीले ध्रुव हैं। उन पर बर्फ की टोपियां दिखायी देती हैं । वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वहां पाये जाने वाली बर्फीली टोपियां और बादल, कार्बन डाई-ऑक्साइड की जमी हुई बर्फ के बने हैं । वहां मौसम भी बदलते हैं । इसका अर्थ यह हुआ मंगल ग्रह भी पृथ्वी की तरह अपनी धुरी पर थोड़ा झुका हुआ है । कभी यह घूमता हुआ पृथ्वी के 5,60,000 किमी. तक निकट आ जाता है और कभी 40,00,000 किमी. दूर चला जाता है । एक समय ऐसा भी आता है जब घूमते-घूमते पृथ्वी, सूर्य और मंगल एक सीध में आ जाते हैं । यह अवस्था वियुति कहलाती है । भविष्य में भेजे जाने वाले अंतरिक्ष यानों से मंगल के विषय में और भी जानकारियां प्राप्त होंगी ।

पाथ फाइंडर ने मौसम संबंधी उपकरणों की सहायता से मंगल ग्रह के मौसम की जानकारी भी भेजी है । जिसके अनुसार मंगल की सतह पर एक जगह ऐसी है जहां दोपहर के समय भी तापमान शून्य से बहुत कम होता है । पृथ्वी पर भी कुछ स्थानों पर ऐसा होता है । इससे यह प्रमाणित होता है कि मंगल का पर्यावरण बहुत कुछ पृथ्वी जैसा ही है । लेकिन अभी बहुत से आंकड़ों का विश्लेषण होना शेष है इसलिए निश्चित रूप से कुछ कह पाना कठिन है ।

पाथ फाइंडर अंत नहीं बल्कि आरंभ है । इस मिशन को आगे बढ़ाने के लिए अमरीका, 'मार्स ग्लोबल सर्वेयर' यान पहले ही भेज चुका है । यह यान मंगल की

(शेष भाग पृष्ठ -24 पर देखें)

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1997) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

मानव जीवन रक्षक के रूप में सुअर की उपयोगिता

कु. पूजा तिवारी,
द्वारा श्री राम प्रताप तिवारी,
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम, रांची-834 010

मानव शरीर की कई असाध्य व्याधियों पर अंकुश पाने हेतु अंग-प्रत्यारोपण विधा का विकास तेजी से हो रहा है। इस विधा की तकनीकी जटिलताओं के वैज्ञानिक निराकरण की दिशा में हाल में हुए कुछ अनुप्रयोगों से स्पष्ट हुआ है कि मानव-शरीर के प्रत्यारोपित अंगों के स्थान पर ट्रांसजनिक स्तन-धारियों, यथा - सुअर, चिंपान्जी, बबून आदि प्रजाति के बंदरों के अंगों का मानव में प्रत्यारोपण करना संभव हो सकेगा। प्रस्तुत लेख में प्रत्यारोपण हेतु अनुवांशिकीय रूप से प्रजनित सुअर के प्रयोग की संभावना पर प्रकाश डाला गया है।

संप्रति वैज्ञानिक शोध के परिदृश्य में विज्ञानगल्प और विज्ञान के व्यवहारिक जगत के मध्य की विभाजन रेखा शनैः शनैः धुंधली पड़ती जा रही है। हाल के कुछ वर्षों में संयुक्त राज्य अमरीका में किये गये कुछ परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि सुअर और बबून (बंदरों की एक प्रजाति) के अंगों का मानव-शरीर में सफल प्रत्यारोपण किया जा सकता है। सैनफ्रांसिस्को के एक चिकित्सालय में वर्ष 1994 के अंत में किये गये अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण में बबून की अस्थिमज्जा का सफल प्रत्यारोपण मानव-शरीर में किया गया था। दिसंबर, 1995 में जैफ़ गैटी नामक एक 38 वर्षीय एड्स (AIDS) से पीड़ित रोगी (जो कैलिफोर्निया के ओकलैंड स्थान का निवासी है) को विश्व का सर्वप्रथम ऐसा व्यक्ति होने का सौभाग्य मिला जिसमें बबून की अस्थिमज्जा का शत-प्रतिशत सफल प्रत्यारोपण किया गया है। गैटी को अमरीका के खाद्य एवं औषधि प्रशासन (एफ. डी. ए.) से एतदर्थ आवश्यक अनुमत प्राप्त करने में 6 मास का लंबा समय लगा। श्री जोनाथन एलेन के अनुसार (जो एफ. डी. ए. के सलाहकार मंडल के एक सदस्य हैं) एफ. डी. ए. एवं रोग नियंत्रण केंद्रों के कर्मचारी प्रत्यारोपण के संभावित परिणामों के बारे में पूर्व भयाक्रांत थे। इन संभावनाओं की जटिलताओं को रोगी के पारिवारिक सदस्यों एवं एक सामाजिक संस्था के द्वारा प्रचारित किया गया था। उपर्युक्त प्रत्यारोपण की पृष्ठभूमि में वैज्ञानिकों द्वारा सबसे बड़ा तर्क यह दिया जा रहा था कि बबून प्रजाति के बंदरों में एड्स रोग के प्रति सुग्राहिता शून्य होती है अतः प्रत्यारोपण के फलस्वरूप रोग प्रतिरोधी तंत्र एड्स और एच. आई. वी. विषाणुओं का भी प्रतिरोधी सिद्ध होगा।

जीव-जगत में स्तनधारियों की एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में अंग-प्रत्यारोपण के प्रयोग किये जाते रहे हैं। वर्ष 1667 में डॉ. रिचर्ड लॉवर ने भेड़ के रक्त का मानव शरीर में आधान (ट्रांसफ्यूजन) करने का असफल प्रयास किया था। वैज्ञानिक आधार पर रक्त को एक अंग या ऊतक की श्रेणी में रखा जाता है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में डॉ. एमेरिक उलमैन ने सुअर के वृक्क (गुर्दे) का मानव शरीर में असफल प्रत्यारोपण किया। वर्ष 1960-70 के दशक में कुत्ते के शरीर में एक सुअर के हृदय का प्रत्यारोपण किया गया परंतु प्रत्यारोपण के मात्र 30 मिनट पश्चात ही कुत्ते की मृत्यु हो गयी। इसी प्रकार का एक असफल प्रयोग मानव शरीर में चिंपान्जी प्रजाति के बंदर के हृदय-प्रत्यारोपण का किया गया।

प्रत्यारोपण के सफल प्रयोग :

वास्तव में गैटी की अस्थिमज्जा के सफल प्रत्यारोपण की घटना के कुछ समय पूर्व शल्यचिकित्सकों ने सुअर

के हृदय का सफल प्रत्यारोपण कई बबूनों के शरीर में कर लिया था और विश्वव्यापी मान्यता भी प्राप्त की थी। बबून बंदरों के यकृत को मानव शरीर में प्रत्यारोपित करने के प्रयास हाल के कुछ वर्षों में पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान में कार्यरत थॉमस स्टाले और सुजैन इल्ड स्टैंड ने किये, यद्यपि रोगी व्यक्तियों की मृत्यु 4 से 30 दिनों के अंतराल में विविध संक्रमणों के कारण हो गयी। इन सभी व्यक्तियों के यकृत मृत्युपर्यंत ठीक प्रकार से कार्यशील रहने के प्रमाण मिले। इस विधा का तकनीकी नामकरण 'जेनो प्रत्यारोपण' (Xeno-transplantation) हुआ परंतु इसकी कई आधारभूत समस्याएं थीं, यथा - ग्राही व्यक्ति के शरीर द्वारा प्रत्यारोपित अंग की घातक अस्वीकृति की महती संभावना के अतिरिक्त दाता बबूनों से मानव शरीर में विभिन्न संक्रमणों के प्रसार की ज्वलंत समस्या आदि।

सामान्यतया, विषाणुओं और अन्य जीवाणुओं के द्वारा ग्राही शरीर में नयी-नयी व्याधियों का आविर्भाव इस कारण से हो जाया करता है क्योंकि इनको सामान्य विधियों से प्रदायी जंतु के अंगविशेष से अलग कर पाना वस्तुतः असंभव है। इस तथ्य का पता वर्ष 1995 में ज़ायरे (द. अफ्रिका) में प्रसारित एबोला वायरस ज्वर की महामारी के संदर्भ में चला।

वास्तव में बंदरों में होने वाली घातक रक्त-स्रावी व्याधि का प्रमुख कारक एबोला वायरस है जो मानव शरीर में पहुंच जाने पर भी इसी घातक व्याधि को जन्म देता है। इसी वर्ग के एक अन्य विषाणु - HIV का पारगमन मनुष्यों में संभवतः प्राइमेट्स (मानव संवर्ग के अन्य जंतुओं यथा बबून, चिंपान्जी, ओरैंग-उटान आदि) के द्वारा हुआ है जो HIV से ग्रस्त थे।

प्रत्यारोपण के संदर्भ में आचार संहिता :

गैटी के ख्याति प्राप्त प्रत्यारोपण के उपरांत इस प्रत्यारोपण विधा की प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं के संदर्भ में आचार संहिता के विकास की आवश्यकता का सार्वभौमिक अनुभव किया गया है क्योंकि इस सारी प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है - प्रदायी जंतु का सर्वथा रोगाणु मुक्त होना क्योंकि HIV संक्रमित रक्त के

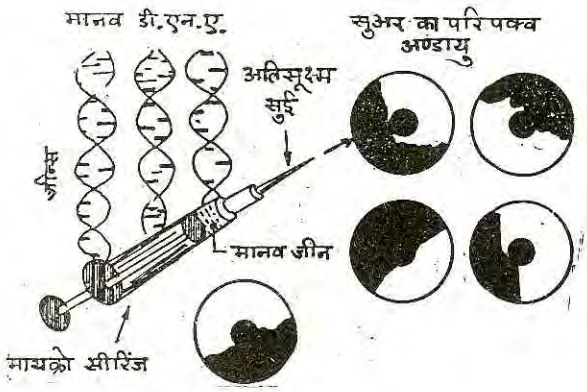

चित्र-1 : सुअर के अंडायु में मानव जीन का प्रवेश

मानव शरीर में प्रत्यारोपित किये जाने के कई मामलों की दुःखद परिणिति के उदाहरण मिले हैं। संसार के विकसित देशों में भी यही समस्या अनुभव की जा रही है। इसके अतरिक्त एक और समस्या है कि जीवाणु (जो दाता जंतु के शरीर में उपस्थित होते हुए भी उसके लिए हानिप्रद नहीं हैं) मानव शरीर में अंग विशेष के प्रत्यारोपण के उपरांत घातक सिद्ध होने लगते हैं। इस समस्या पर किये गये अधुनातन शोधों से यह पता चला है कि सुअर के अंग-प्रत्यंग प्रत्यारोपण विधा के हेतु अधिक सुरक्षित होते हैं।

आनुवंशिकीय रूप से प्रजनित सुअर :

संप्रति शोधकार्यों के परिप्रेक्ष्य में कई विकसित देशों में मानव चिकित्सा हेतु प्रत्यारोपण विधा की विकसित तकनीकों की अधिकाधिक सफलता का लक्ष्य अर्जित करने की दिशा में सीमित प्रजनन द्वारा ऐसे सुअरों का आविर्भाव किया जा रहा है जो आनुवांशिकीय रूप से अभियंत्रित (Geneticlly engineered) होते हैं। ऐसे सुअरों की कोशिकाएं बाह्य स्तर पर विशिष्ट एन्टीजेनयुक्त होती हैं जो मानव शरीर में प्रत्यारोपित किये जाने पर अत्यल्प मात्रा में ही प्रतिक्रियात्मक लक्षणों को जन्म देती हैं। इस प्रकार से उत्पन्न आनुवंशिकीय अभियंत्रित सुअर

के हृदय का प्रथम प्रत्यारोपण शीघ्र ही इंग्लैंड में किये जाने की संभावना है। आनुवंशिकीय अभियंत्रित सुअरों के निर्माण हेतु मानव जीनों को सर्वप्रथम सुअर से अंडकोशिका में माइक्रो इंजेक्ट किया जाता है। इस कार्य हेतु वयस्क मादा सुअर को निषेचन योग्य अंड-कोशिकाओं के उत्पादन हेतु प्रेरित किया जाता है फिर उसे नर सुअर से समागम हेतु प्रस्तुत किया जाता है। संभोग क्रिया समाप्त हो जाने पर सावधानी पूर्वक निषेचित अंडों को प्रक्षालित (wash) कर लेने के उपरांत इनमें अतिसूक्ष्म सुंइयों के द्वारा मानव जीनों की कुछ प्रतिलिपियों को इन्जेक्ट कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया को 'ट्रान्स-जेनेसिस' कहते हैं। इस क्रिया में प्रयुक्त मानव जीन केवल कुछ ही अंडों के डी. एन. ए. में विद्यमान होता है क्योंकि सुअर की सभी अंडकोशिकाओं में इनका अंतर्क्षेपण (Injection) नहीं किया जाता है। पुनर्प्रजनन की क्रिया के फलस्वरूप आगे की पीढ़ियों में यह स्वत: ही उपस्थित हो जाता है और पुन: आनुवंशिकीय अभियंत्रण क्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती है। विशुद्ध लाइनों को चयनित प्रजनन विधा से विकसित कर लिया जाता है।

ट्रांसजनिक सुअर के हृदय में वास्तव में कई अतिसूक्ष्म सांकेतिक अणु विद्यमान होते हैं जो उस अंग विशेष का मानव के उसी अंग के सदृश्य स्थापित करने में सक्षम होते हैं। जब इस प्रकार के अंग को मानव शरीर में जेनोग्राफ्ट कर दिया जाता है तो अतिवादी अस्वीकृति के लक्षणों के आविर्भाव की संभावनाएं निश्चय ही न्यूनतम होंगी।

शनै: शनै: अंग प्रत्यारोपण विधा के दृष्टिकोण से किसी उपयुक्त दाता की खोज की दुरुह समस्या का निश्चित और सहज हल प्राप्त हो जाने की संभावनाएं तीव्रतम हैं और ट्रांसजनिक सुअर के शरीर के अन्य महत्वपूर्ण अंगों को मानव जीवन के कल्याणार्थ प्रत्यारोपित करने की दिशा में आने वाले कुछ वर्षों में आशातीत सफलता की संभावनाएं प्रखर होने लगी हैं, यथा - फेफड़े, यकृत, अस्थिमज्जा और पैंक्रिएस तथा ऑइलेट्स ऑफ लैंगर हैंस।

इस आश्चर्यजनक पद्धति में प्रयुक्त होने वाले व्याधिरहित ट्रांसजनिक दाता जंतुओं को प्रयोगशाला में सदैव उपलब्ध रखने हेतु उचित व्यवस्था करनी होगी परंतु इस संदर्भ में जंतुओं के जीने के अधिकार संबंधी न्यायिक सीमाएं और अधिनियमों की व्यवस्था अभी एक अनुत्तरित प्रश्न रह जाता है।

❐❐❐

मंगल अभियान : कुछ उपलब्धियां

(पृष्ठ -21 का शेष भाग)

400 किमी. ऊंची कक्षा में रह कर दो वर्ष तक मंगल की सतह और उसके मौसम के अध्ययन करेगा। अगले वर्ष नासा दो और अंतरीक्ष यान मंगल की ओर भेजेगा जिनमें से एक मंगल पर उतरेगा और दूसरा उसकी परिक्रमा करेगा। इसके बाद हर दूसरे साल मंगल पर यान भेजने की योजना है। अंत में, 2005 में नासा एक बड़ा अंतरिक्ष यान भेजेगा जो वहां से मिट्टी के नमूने लेकर आयेगा। अमरीका के अतिरिक्त रूस, फ्रांस और जापान भी मंगल ग्रह में निहित रहस्यों को सुलझाने के प्रयासों में लगे हैं।

आज वैज्ञानिकों का सारा ध्यान पृथ्वी और मंगल की समानताओं पर केंद्रित है। यद्यपि पाथ फाइंडर का मुख्य लक्ष्य मंगल ग्रह पर जीवन की खोज करना नहीं बल्कि वहां का भौमिकी अध्ययन करना था जिससे ग्रह के प्राचीन भौमिक इतिहास को जानना संभव होगा। तब शायद यह भी पता चल सके कि कभी ग्रह पर पाया जाने वाला पानी कहां चला गया। यदि यह पता चल गया तो हो सकता है कि मंगल ग्रह के आदि जीवों का भी अता-पता मिल जाये। ये सब मात्र संभावनाएं हैं, निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है।

❐❐❐

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1997) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

चतुर संरचनाएं

राजकुमार जैन
वैज्ञानिक 'डी',
सैनिक उड़ान योग्यता का क्षेत्रीय कार्यालय (वायुयान),
सेमिलैक मार्थहल्ली कॉलोनी पोस्ट,
बैंगलूर-560 037

मानव को प्रकृति ने एक चतुर, समझदार कृति के रूप में प्रस्तुत किया है। यह कृति अपने भले या बुरे के लिए सोचकर निर्णय ले सकती है। बीमार पड़ने पर, क्षतिग्रस्त होने पर मरम्मत की बात वह कह सकती है। दु:ख या सुख आने पर उसको व्यक्त कर सकती है। कष्ट होने पर, टूटने पर रो-रोकर अपना दुखड़ा प्रकट कर सकती है, चेतावनी दे सकती है किंतु मानव द्वारा निर्मित संरचनाएं ऐसा नहीं कर पातीं। यह दुख मानव एक अर्से से अपने दिल में छिपाकर रखे था किंतु अब यह खुले में आ गया है। इसका परिणाम है ऐसी संरचनाओं का निर्माण, अभिकल्पन जो अपनी मरम्मत, अपनी कमजोरियों और अपने आप को जटिल परिस्थितियों में बचाने का कार्य स्वयं कर सकती हैं। यदि आवश्यक हुआ तो अपनी मरम्मत का कार्य भी स्वयं करने में सक्षम होती हैं। यह प्रयास अब भी चल रहा है। मानव निर्मित इसी प्रकार की संरचनाओं की चर्चा जिन्हें 'चतुर' कहा जा सकता है, इस लेख में की गयी है।

प्रकृति द्वारा उत्पन्न संरचनाओं में मानव को श्रेष्ठ समझा जा सकता है। वह चतुर है, समझदार है, इसी कारण प्रकृति की अन्य संरचनाओं के गुणों की भी वह कद्र करता है। हमारीं कथा-कहानियों में लोमड़ी को चतुर समझा जाता है। यहां चतुरता से अर्थ है कि विपरीत परिस्थितियों में भीं यह संरचना, अपने आपको सुरक्षित बनाये रखने की कला में प्रवीण होती है। प्रकृति के नियमानुमार 'श्रेष्ठतम को ही जीवित रहने का अधिकार है' किंतु यह नियम प्रकृति स्वयं नहीं मानती। इसी कारण प्रकृति में हजारों चतुर जीव व वनस्पति मौजूद हैं, और वे अपना जीवनयापन सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

'छुई-मुई' अथवा 'शर्मीली' के बारे में हम सभी ने बचपन में पढ़ा है। यह पौधा भी प्राय: थोड़ी सी गर्मी बढ़ने, आक्रमण की आशंका होने मात्र से ही अपने आप को सिकोड़ लेता है। पत्तियां बंद हो जाती हैं जैसे कि बाह्य आक्रमण से अपने आपको बचाने का प्रयास किया जा रहा है। छुई-मुई की सुरक्षा उस नादान बच्चे जैसी है जो आक्रमण की आशंका से डर कर अपनी आंखें बंद कर लेता है और समझता है कि सुरक्षा हो गयी। इसके बाद भी अधिकांश वनस्पतियों को प्रकृति ने बचाव के लिए अंग प्रत्यंग में काँटे उपलब्ध कराये हैं, जो इनको अन्य श्रेष्ठ जीवों से एक सीमा तक बचाने का प्रयास करते हैं। वानस्पतिक जगत के बाद जीवों को भी सुरक्षा के लिए प्रकृति ने हथियार उपलब्ध कराये हैं। सींग, दांत, पंजे, विष उगलने, काटने की कला आदि इसी सुरक्षा प्रणाली के ही अंग हैं। गिरगिट को परिस्थिति, वातावरण के अनुसार रंग बदलने की सुविधा प्रदान की गयी है जिससे कि शत्रु उसको पहचान ही न पाये।

मानवीय सुरक्षा :

प्रकृति की श्रेष्ठ कृति मानव ने अपनी सुरक्षा के अनेक उपाय किये हैं। बीमारियों से लड़ने के लिए अनेक प्रकार की दवाएं खोज निकाली हैं। अपने ही जातीय दुश्मनों से सुरक्षा के लिए, बाह्य वातावरण से सुरक्षा के लिए अनेक प्रकार की संरचनाओं का निर्माण किया

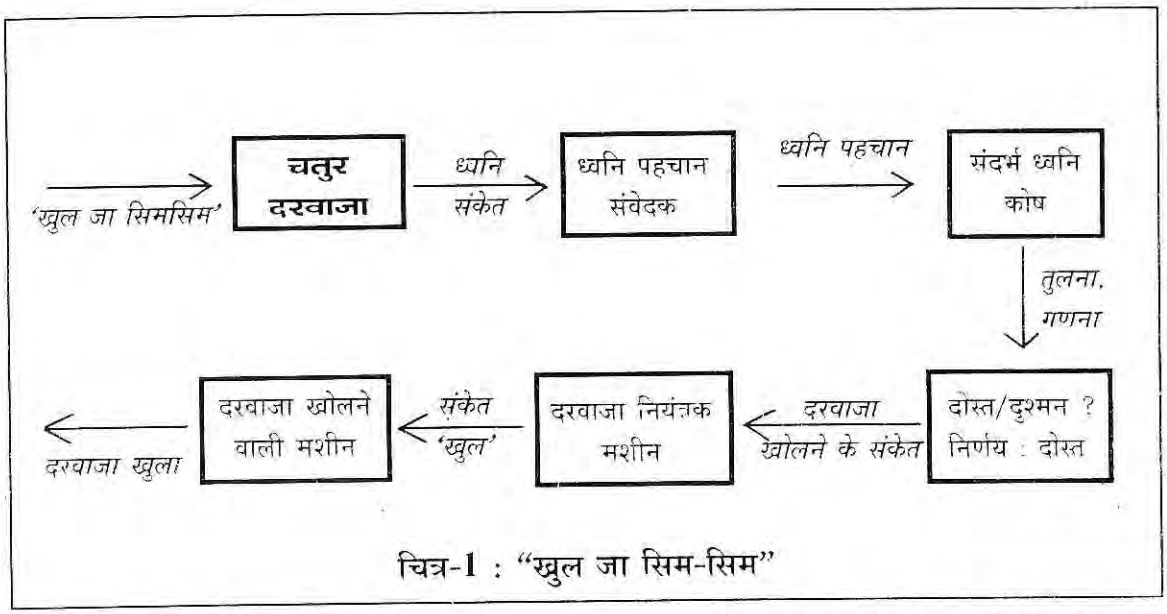

चित्र-1 : "खुल जा सिम-सिम"

है। एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए भारी-भरकम मशीनों का निर्माण किया है। इन सबसे अपनी सुरक्षा की बात उसके मन मस्तिष्क में हमेशा ही रही है। मानव स्वयं परिस्थितियों को देखकर, अनुभव कर अपने बचाव के लिए सोचकर निर्णय लेता है। यह निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि वह अनुभव क्या है। इसी कारण एक-सी परिस्थितियों में भी भिन्न-भिन्न मानव अलग-अलग प्रकार के निर्णय लेते पाये गये हैं। प्रत्येक मानव संरचना का मस्तिष्क अनुभवों का एक खजाना होता है किंतु उस खजाने में से तेजी से, और सही हल ढूंढ़ निकालने में बहुत कम मानव ही सफल हो पाते हैं। अपने ही द्वारा निर्मित संरचनाओं से अपने बचाव का सबसे सरल उपाय उसे यह लगा कि वह इन संरचनाओं को चतुर बना दे। जिससे वे यदि गलत कार्य करती हैं, अपने में कोई कमी, खराबी पाती हैं तो वे स्वयं मानव को चेतावनी दे सकें या अपने आपको ठीक कर सकें। इस प्रकार ये संरचनाएं स्वयं नष्ट होने के पहले, इनके उपयोगकर्ता मानव को बच निकलने का समय प्रदान करती हैं। यह एक अपरोक्ष मानवीय सुरक्षा का उपाय हैजिसे मानव ने स्वयं निर्मित किया है। अपरोक्ष रुप से वह स्वयं इन संरचनाओं के माध्यम से अपनी सुरक्षा का उपाय ढूंढ़ निकाल रहा है। मानव निर्मित यह चतुर संरचना किस प्रकार की होगी, आइए इसकी एक झलक मानवीय इतिहास के माध्यम से देखते हैं।

ऐतिहासिक चतुर संरचनाएं :

'खुल जा सिम-सिम' यह वाक्य आपने बचपन में अनेक बार सुना होगा। यह आवाज लगाते ही दरवाजा खुल जाता है। दरवाजा कोई अन्य दुश्मन न खोल पाये इसलिए यह प्रबंध किया गया था। इसे साधारण रुप में देखें तो यह कहा जा सकता है कि दरवाजे के पीछे व्यक्ति मौजूद रहते थे। वे बाहर खड़े व्यक्ति को पहचान कर, गुप्त संकेत प्राप्त कर दरवाजा स्वयं खोल देते थे। किंतु यदि चतुर संरचना की दृष्टि से देखें तो पायेंगे कि दरवाजे में लगे ध्वनि पहचान संवेदक, प्राप्त ध्वनि संकेतकों की, पहले से ही ज्ञात संदर्भित संकेतों से तुलनाकर, पहचानकर, मशीन नियंत्रक द्वारा उचित संकेत पाकर, तब दरवाजा खुलने वाली मशीन स्वयं को चलाकर दरवादा खोलती थी तो यह अतिशयोक्ति न होगी। इस प्रक्रिया को चित्र-1 में दिखाया गया है।

द्विधात्विक पदार्थों से बनी पत्ती संरचना को भी चतुर कहा जा सकता है, जो एक एल्यूमीनियम पत्ती और एक दूसरी तांबा पत्ती को जोड़कर बनायी जाती है। यदि

इस पत्ती वाली संरचना को इसके दो किनारों पर जकड़ दिया जाता है, तो यह संरचना तापक्रम बढ़ने पर एक ढंग से विकृति को प्राप्त होती है । इस विकृति का उपयोग एक विद्युत परिपथ को जोड़ने के लिए किया जाता है । इसके जुड़ते ही विद्युत घंटी बजकर, तापक्रम बढ़ने की या आग लगने की चेतावनी देती है । यह संरचना की चतुरता है कि वह आग लगने की सूचना मानवीय सुरक्षा के लिए प्रदान करती है (चित्र-2) ।

इस प्रकार की चतुर संरचनाओं के अनेक उदाहरण इतिहास में होंगे जिन्हें कभी स्मृति पदार्थों के रूप में और कभी-कभी किसी अन्य रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है किंतु आज की चतुर संरचनाएं इससे कहीं ज्यादा आगे बढ़ने के प्रयत्न में हैं । हो सकता है निकट भविष्य में ये संरचनाएं किसी न किसी रूप में आम जरूरत की संरचनाओं में सम्मिलित हो जायें ।

भविष्य की योजनाएं :

बस, ट्रक, रेलवे, वायुयान दुर्घटनाओं में या अट्टालिकाओं के गिरने में मानव के जानमाल की क्षति अत्यधिक होती है । अधिकांश दुर्घटनाएं जिन क्रांतिक हिस्सों के टूटने से होती हैं यदि उनके स्वास्थ्य की जांच समय-समय पर की जाये तो दुर्घटनाएं बचायी जा सकती हैं । यदि इन संरचनाओं को चतुर संरचनाओं में बदल दिया जाये तो ये स्वयं ही अपने स्वास्थ्य की जानकारी देने लगेंगी । करना मात्र यह है कि इन संरचनाओं में संवेदक लगाने हैं जो चालक कक्ष में स्थित एक संगणक को संकेत देते रहते हैं । जब कभी ये संकेत खतरनाक (क्रांतिक) सीमा को पार कर जाते हैं तो ये इसकी सूचना मानव उपयोगकर्ता तक पहुंचा देते हैं । इस प्रकार यह संरचना अपनी चतुरता के कारण दुर्घटना को रोकने में सफल होती है ।

इसी प्रकार की कार्यवाही नाव, वायुयान में एक सीमा से ज्यादा भार होने, पुल पर सीमा से ज्यादा यातायात होने की दशा में भी की जा सकती है । यह सब तो चतुर संरचनाएं कर ही सकती हैं, वे यह भी कर सकती हैं कि यदि एक भारी गाड़ी पुल पर आनेवाली है जो पुल की सामर्थ्य से भी ज्यादा है तो वे एक चतुर पुल से यह आशा करती हैं कि वह अपनी संरचना में क्षणिक परिवर्तन कर स्वयं को इस बल को सहने योग्य बना सके । यहां ऐसी व्यवस्था करनी पड़ती है कि संरचना अपनी सामर्थ्य में परिस्थिति अनुसार परिवर्तन करने में सफल हो । कभी-कभी जो भारी भूकंप आता है उसके लिए संरचना का अभिकल्पन निर्माण करना एक कीमती कार्य होता है । यदि अट्टालिका को चतुर बना दिया जाये तो वह अट्टालिका भूकंप आने पर तेजी से कार्यवाही कर, उस भूकंपीय आवृत्ति के विपरीत अपनी प्राकृतिक आवृत्ति बदल सकती है जिससे वह नष्ट होने से बच जाये । वह यह भी कर सकती है कि भूकंपीय आवृत्ति पर अट्टालिका को जो ऊर्जा प्राप्त हो रही है उसे एक अन्य संरचना द्वारा शोषित कर, अट्टालिका को बचा ले ।

यह सब कैसे होता है कि संरचना अपने बचाव के लिए चतुरतापूर्वक ऐसे कदम उठाती है कि वह सुरक्षित रह सके ? यहां कोई जादू नहीं होता और न कोई तिलस्मी खेल । यह सब उसी प्रकार होता है जैसे मानव संरचना कार्य करती है । कुछ इस प्रकार की सुनियोजित कार्यवाही होती है कि संरचना चतुर बन जाती है । इस कार्यवाही को निम्न रूप में रखा जा सकता है ।

1. वर्तमान संरचना के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करना – गुण, अवगुण, कमियां आदि ।
2. आनेवाले बलों एवं संरचना के स्वास्थ्य के बारे में पता लगाने के लिए संवेदकों को बिछाना ।
3. संरचना के स्वास्थ्य और खतरे को देखकर, नुकसान होने की गणना करना ।
4. खतरे से बचाव की प्रक्रिया की गणना करना ।
5. बचाव की प्रक्रिया, चेतावनी, संरचना गुण परिवर्तन आदि कार्यवाही करना ।

संरचना संबंधी जानकारी :

सर्वप्रथम वर्तमान संरचना की पूर्ण जानकारी प्राप्त की जाती है तब उसके अभिकल्पन की सीमाएं निश्चित की जाती हैं । यदि अभिकल्पन के पहले ही संरचना को चतुर बनाने का निर्णय ले लिया गया है तो उसके गुण, उसमें प्रयुक्त पदार्थ के गुण, उसकी कमजोरियों की जानकारी इकट्ठी की जाती है । किस प्रकार के बलों के

लिए संरचना कमजोर है और समय के साथ संरचना में क्या परिवर्तन हो सकते हैं इसकी जानकारी आवश्यक होती है । यदि अभिकल्पन किया जाना है तो बचाव के उपाय भी सोचने आवश्यक होते हैं ।

स्वास्थ्य, बलों का पता लगाना :

संरचना पर ऐसे संवेदक लगाये जाते हैं जो संरचना पर आनेवाले संभावित बलों की माप कर सकें या उसके ऊपर आनेवाले प्रतिबलों की माप कर सकें । इस कार्य के लिए संरचना पर क्रांतिक हिस्सों में विकृति मापकों को बिछा दिया जाता है । इन विकृति मापकों का संपर्क आंकड़े इकट्ठे करने वाले गणक से होता है जो तारों द्वारा गणक से संबंध बनाये रखते हैं । यदि तापक्रम, सापेक्षिक आर्द्रता या किसी रसायन की उपस्थिति का पता लगाना हो तो उसके अनुसार ही संवेदक लगाये जाते हैं । बलों की सीधी माप के लिए दाबमापी, संरचना का विस्थापन मापन या संरचना पर वेगवृद्धि का पता भी उचित संवेदकों, यंत्रों की सहायता से किया जाता है । इन प्राप्त आंकड़ों से संरचना के स्वास्थ्य और संरचना पर आने वाले बलों की सूचना समय के साथ मिलती रहती है ।

खतरनाक परिस्थिति की गणना :

उपर्युक्त रूप से प्राप्त आंकड़ों की सहायता से यह गणना करनी पड़ती है कि वर्तमान संरचना आनेवाले बलों, परिस्थितियों को सहने योग्य है या नहीं । यह गणना तभी संभव है जब गणक में संरचना के गुण, सीमाएं सभी सही रूप से इकट्ठी की गयी हों । सुरक्षा की दृष्टि से इस गणना के ऊपर उचित सुरक्षा गुणांक की भी व्यवस्था की जाती है । इस गणना के ऊपर ही यह निर्भर करता है कि आगे क्या कार्यवाही की जानी है । इस कारण इसका सही होना अति आवश्यक है । सही के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि यह तेजी से की जाये जिससे कि समय रहते उचित कार्यवाही की जा सके ।

खतरनाक परिस्थिति की गणना :

बचाव की प्रक्रिया का प्रथम चरण खतरे की सूचना देना है । मानव समय रहते उचित कार्यवाही कर सकता है जैसे कि वाहन खाली करना, वायुयान को

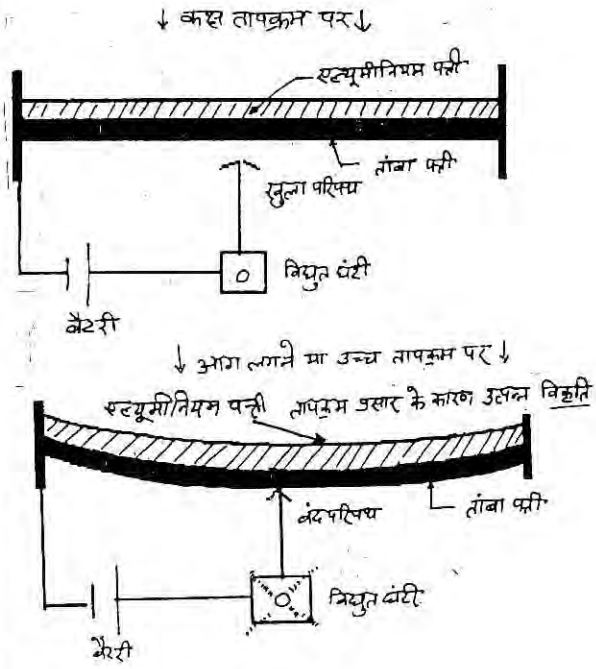

चित्र-2 : 'चतुर संरचना' - आग लगने की चेतावनी देने वाली द्विधात्विक पट्टी ।

उतार लेना, अट्टालिका से दूर हो जाना आदि । दूसरे प्रकार की प्रक्रिया में संरचना के रूप, गुणों में परिवर्तन यदि संभव है तो, इस प्रकार किये जाते हैं कि संरचना इन बलों को सहने योग्य बन सके । चतुर संरचनाओं के लिए यह कार्य अभिकल्पन और निर्माण के समय ही करना पड़ता है । वायुयान के अस्थिर होने या अपने मार्ग से विचलित होने पर, स्वचालित नियंत्रण द्वारा उसे वापस अपनी स्थिति में लाना यह बचाव की एक प्रक्रिया है । अभिकल्पन के समय ही इसे संवेदकों, गणकों, आदि के साथ वायुयान में उचित जगह पर स्थापित करना पड़ता है । भूकंप से बचने के लिए संभावित भूकंपीय बलों की गणना और अट्टालिका पर पड़ने वाले उसके प्रभाव की गणना कर, तेजी से संरचना की दृढ़ता या आनेवाली ऊर्जा के शोषण की व्यवस्था करना पड़ती

(कृपया शेष पृष्ठ 33 पर देखें)

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1997) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

अकार्बनिक विनिमायक - एक परिपक्व तकनीक

नारेन्द्र सिंह राठौर
प्रिफ्री (PREFRE),
भा. प. अ. केंद्र, पो. धिवली,
तारापुर-401 502

अकार्बनिक आयन विनिमायक के इतिहास पर अगर दृष्टि डालें तो अस्थि कोयला से लेकर नवीनतम संश्लेषित विनिमायक तक एक क्रांतिक विकास दृष्टिगोचर होता है। इन अकार्बनिक आयन विनिमायकों की उपयोगिता उनके चयनात्मक एवं ध्वंसक व रूक्ष माध्यम में प्रतिरोधकता के कारण पर्यावरण रसायन और दूसरे क्षेत्रों में दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। दशकों से ज्ञात अकार्बनिक आयन विनिमायक व्यावसायिक रूप से अब उपलब्ध हैं। जियोलाइट एवं कैल्शियम फॉस्फेट के गुण लगभग पूर्ण रूपेण ज्ञात किये जा चुके हैं परंतु फिर भी अभी बहुत से अन्य लक्षण हैं जो उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हैं। इनकी ताप स्थायित्वता एवं विकिरण प्रतिरोधकता आमतौर पर कार्बनिक विनिमायकों से अधिक होती है। यही कारण है कि इनके द्वारा प्राप्त पृथक्करण घटक सदैव कार्बनिक विनिमायक से किसी विशिष्ट आयन के लिए अधिक होता है। प्रस्तुत लेख में विभिन्न अकार्बनिक विनिमायकों की प्रकृति एवं गुणधर्मों की संक्षिप्त चर्चा की गयी है।

साधारणतया सभी अकार्बनिक विनिमायक आवश्यक रूप से आयन आदान-प्रदान प्रक्रिया का अनुसरण नहीं करते हैं। जियोलाइट एवं मृत्तिका सामान्य आयन विनिमायक हैं। कुछ फॉस्फेट, टिटैनेट, हेटरोपॉली अम्ल, लवण एवं द्विपरतीय हाइड्रॉक्साइड भी आयन विनिमय व्यवहार प्रदर्शित करते हैं, पर अन्य सभी पालन नहीं करते। उपरोक्त बताये गये विनिमायकों में से कुछ प्रमुख प्रकारों के बारे में विवरण प्रस्तुत है।

(अ) हाइड्रस ऑक्साइड :

सर्वप्रथम बीजर ने हाइड्रस ऑक्साइड को जलीय माध्यम में अवक्षेपित कर धातु एवं अधातु के ऑक्साइड प्राप्त किये तब उन्हें इस यौगिक के साथ अल्प मात्रा में जल के अणु की उपस्थिति का भी पता चला। किंतु यह मात्रा अनुपातिक हाइड्रॉक्साइड जैसी नहीं थी और ये विनिमायक की भांति आयनों के आदान-प्रदान जैसी क्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। इन हाइड्रस ऑक्साइडों को मुख्यतः दो भागों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम जिनमें आयन विनिमय ऊपरी सतह से होता है। इसके सरल उदाहरण ZrO_2 एवं SnO_2 हैं।

दूसरे प्रकार जिसमें गुहिका एवं सुरंगनुमा संरचना के द्वारा विनिमय होता है, जैसे एन्टीमनी एवं मैंग्नीज के हाइड्रस ऑक्साइड।

प्रथम प्रकार के हाइड्रस ऑक्साइडों को हाइड्रेटस कण कहते हैं। ये धनायन एवं ऋणायन दोनों तरह के होते हैं। प्रायः 3, 4, 13 एवं 14 वें समूह की धातुएं हाइड्रस ऑक्साइड बनाती हैं। ये अपनी स्थूल संरचना के कारण अलग से पहचाने जाते हैं जो कि उनके एक मृत्कला ऑक्साइड के सदृश्य होते हैं। इनकी सतह पूरी तरह से हाइड्रॉक्सिल समूह तथा हाइड्रोजन बंधित जल के अणु से आच्छादित रहती है तथा आयनों का उदग्रहण pH के ऊपर निर्भर होता है। जैसे-जैसे pH बढ़ता जाता है विनिमायक द्वारा धनायनों का उदग्रहण भी बढ़ता

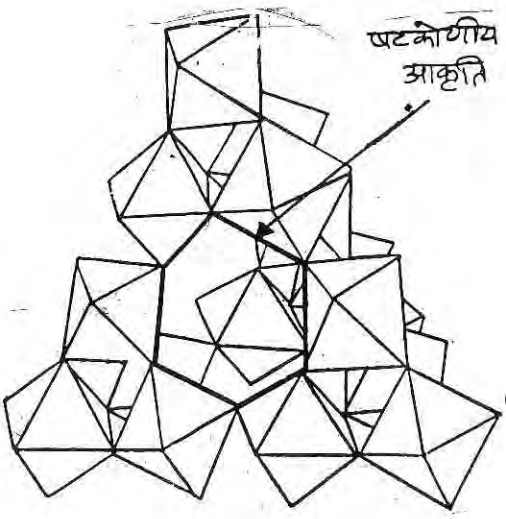

चित्र -1 : पाइरोक्लोर संरचना

जाता है । इसके ठीक विपरीत ऋणायनों का उदग्रहण अम्लीयता के साथ बढ़ता है । उदाहरण के तौर पर $SnO_2.H_2O$, $ZrO_2.H_2O$ से अधिक अम्लीय प्रकृति का होता है । Na^+ के लिए उनकी उदग्रहण क्षमता अधिक होती है । उसी तरह हाइड्रस जिरकोनिया ($ZrO_2.H_2O$) ऋणायन के लिए, किसी दिये गये अम्लीय pH पर हाइड्रस टिन ऑक्साइड ($SnO_2.H_2O$) से अधिक विनिमय क्षमता प्रदर्शित करता है ।

दूसरे प्रकार के ऑक्साइड ढांचानुमा हाइड्रेट्स हैं जो सामान्यतया 5 वें एवं 15 वें समूह की धातुओं के उच्च ऑक्सीजनित अवस्था द्वारा बनते हैं । जब हाइड्रस एन्टिमनी (V) ऑक्साइड शीघ्र अवक्षेपित किया जाता है तब एक भंगुर उत्पाद प्राप्त होता है जो कि लंबे समय तक उच्च ताप एवं अम्लीय माध्यम में रखने पर अस्थायी क्रिस्टलीयता प्रदर्शित करता है । मुख्यत: ये पदार्थ तीन प्रकार की क्रिस्टलीय अवस्थाओं में पाये जाते हैं : (I) पाइरोक्लोर, (II) एक परतीय, एवं (III) धनाकृतिक $HSbO_3.xH_2O$ ।

साधारणत: पॉली एन्टीमनिक अम्ल के लिए पाइरोक्लोर अवस्था का उल्लेख किया जाता है । यह एक धनात्मक विनिमायक है जिसकी क्षमता 5.1 मिली तुल्यांक/ग्राम तक आंकी गयी है । पाइरोक्लोर की संरचना की पुष्टि क्षय-किरण विवर्तन के द्वारा की गयी एवं संयोजित सूत्र $(H_3O)_2Sb_2O_6.xH_2O$ दिया गया (चित्र-1) । इस सूत्र की सहायता से आयन विनिमय क्षमता एवं तापभारात्मक भार ह्रास-चक्र का ठीक ठीक अंदाजा लगाया जा सकता है । हाइड्रोनियम आयन, पाइरोक्लोर सुरंग के आकार की कठोरता व न फूलने की प्रवृति ही किसी धनायन विशेष के लिए चयनात्मक प्रकृति का निर्धारण करती है । इनका चयनात्मक क्रम विभिन्न धनायनों के लिए इस प्रकार पाया गया : $Na^+ > K^+ > Cs^+ > Li^+$ । यह चयनात्मक क्रम जलीकरण ऊर्जा एवं धनायनों के आकार के बीच सामंजस्य को प्रदर्शित करता है । पूर्ण रूपेण हाइड्रेटेड आयनों को प्रवेश पाने के लिए पाइरोक्लोर की सुरंग बहुत संकरी होती है । इसलिए मात्र आंशिक हाइड्रेटेड आयन ही प्रवेश कर पाते हैं । इसका चयनात्मक क्रम विद्युत स्थैतिकी एवं हाइड्रेशन प्रभाव के बीच एक प्रकार का सामंजस्य बनाये रखता है ।

ढांचानुमा हाइड्रेट्स साधारणतया बहुत कमजोर क्रिस्टलीय प्रकृति के होते हैं किंतु इनकी क्रिस्टलीयता, अम्लीय माध्यम या जलीय ताप के साथ उपचार करके बढ़ाई जा सकती है । उपरोक्त विधि से उच्च स्तरीय क्रिस्टलीय प्रकृति वाले प्राप्त ढांचानुमा हाइड्रेट्स के द्वारा ठीक-ठीक तत्त्वों का निर्धारण, अत्यधिक नियमित अनुमापन वक्र तथा चयनात्मक प्रकृति में कुछ परिवर्तन प्राप्त किये जा सकते हैं । इस तरह से प्राप्त होने वाले पदार्थों में उनके पूर्ण रूप से क्रिस्टल संरचना का हल निकालना संभव हो जाता है जैसा कि एन्टिमनिक हाइड्रेट में किया गया । इसके अतिरिक्त आयन विनिमय प्रक्रिया के बारे में भी अत्यधिक जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है ।

(ब) पर्तदार आयन विनिमायक :

(1) ऑक्साइड : इस श्रेणी के यौगिक बहुत संख्या में उपस्थित हैं जो कि आयन विनिमायक की भांति कार्य करते हैं । इसमें क्षारीय धातु टिटैनेट जिनका साधारण

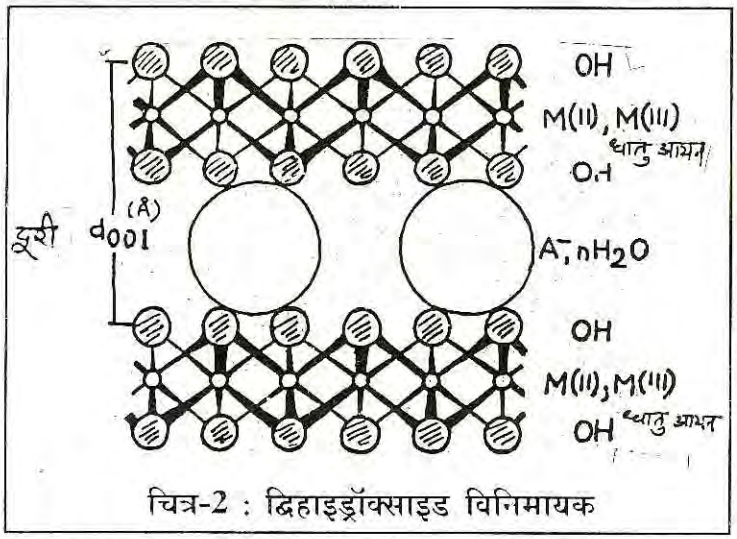

चित्र-2 : द्विहाइड्रॉक्साइड विनिमायक

सूत्र $M_2Ti_xO_{2x+2}$ आते हैं। बहुत से मैग्नेट्स एन्टीमनेट, टिटैनोनियाबेट्स, नाइयोबेट्स एवं फॉस्फेट प्रकार के विशेष रुप चौथे एवं 14 वें समूह में आते हैं। फॉस्फेट के अलावा इस प्रकार के यौगिकों को क्षारीय विलयन में जलीय ताप अभिक्रिया या उच्च ताप पर ठोस अवस्था में अभिक्रिया के द्वारा बनाया जाता है। इस प्रकार के यौगिकों में धातु ऑक्साइड पर्त में धनायन पर्त के बीच में स्थित होता है। साधारणत: इस प्रकार के विनिमायक उसके धनात्मक रुप में आंतरिक पर्त से धनायन निष्कासित करने के पश्चात प्रयोग किये जाते हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभी धनायन, हाइड्रोनियम आयन (H_3O^+) की तरह उपस्थित नहीं होते। कुछ तो क्षारीय ऑक्सीजन पर्त में खासतौर से जुड़े रहते हैं। इस तरह की विभिन्नता एक के बाद एक धनायनों का प्रतिस्थापन प्रदर्शित करती है। उदाहरण के तौर पर $H_2Ti_4O_9.1.2H_2O$ के साथ यह आसानी से देखा गया है।

(2) चौथे एवं 14 वें समूह के फॉस्फेट्स : सर्वप्रथम के तत्त्वों द्वारा जो आयन विनिमायक बनाये गये वे भंगुर-जेल के रुप में प्राप्त हुए थे। इन्हें उस समय फॉस्फेटेड हाइड्रस ऑक्साइड के अनुरुप माना जाता था। लेकिन जब जिर्कोनियन जेल का क्रिस्टलीकरण करके क्षय-किरण द्वारा परीक्षण किया गया तब उसकी प्रकृति के बारे में ठीक-ठीक पता चल पाया तथा सूत्र $Zr(HPO_4)_2.H_2O$ बताया गया। इसमें धातु आयन मध्य सपाट के लगभग कुछ ऊपर एवं कुछ नीचे मध्य पर्त में रहता है। फॉस्फेट समूह, जो कि एक के अंतर से ऊपर एवं नीचे, मध्य सतह में स्थित रहता है, से धातु आयन सेतु के समान स्थित होता है। फॉस्फेट के तीन ऑक्सीजन परमाणु Zr परमाणु से बंधित रहते हैं जबकि चौथा धनायन से बंध स्थापित कर अंतर पर्त तक बढ़ा रहता है। इस पर्त जाल द्वारा षटकोणीय, कोटरनुमा आकृति का निर्माण होता है और जल के अणु इन कोटरों, जो कि तीन P-OH समूह द्वारा निर्मित होता है, उसमें बैठते हैं। दो पर्तों की आपस में दूरी 7.6 ऑन्गस्ट्रॉम तथा P-OH के बीच की दूरी 5.6 ऑन्गस्ट्रॉम होती है। जिस तरह से एक कोटर से जल के अणु, हाइड्रोजन बंध के द्वारा P-OH से बंधित रहते हैं उसी तरह से वान्डरवाल बल के द्वारा दोनों पर्तें आपस में जुड़ी रहती हैं। इन आयन विनिमायकों की क्षमता 6.6 मिली तुल्यांक/ग्राम तक आंकी व मापी गयी है।

इनकी आयन विनिमय प्रक्रिया निम्नलिखित समीकरण के द्वारा समझायी जा सकती है :

$$\underset{7.6\ Å}{Zr(HPO_4)_2.H_2O} + Na^+(\text{जलीय}) + 4H_2O \rightleftharpoons \underset{11.2\ Å}{ZrNaH(PO_4)_2.5H_2O} + H^+(\text{जलीय}) \quad (1)$$

$$\underset{8.8\ Å}{ZrNaH(PO_4)_2.5H_2O} + Na^+(\text{जलीय}) \rightleftharpoons \underset{9.8\ Å}{Zr(NaPO_4)_2.3H_2O} + H^+(\text{जलीय}) + 2H_2O \quad (2)$$

(3) परतीय द्विहाइड्रॉक्साइड : इस श्रेणी के विनिमायक की खोज 1986 में की गयी। इसको सामान्य संयोजित सूत्र $M_n^{II}M^{III}(OH)_{2n+2}X$ के रुप में प्रदर्शित करते हैं। जहां n=2-y और X संतुलित ऋणायन आवेश है। इसकी पर्त में $Mg(OH)_2$ संरचना होती है जिसमें

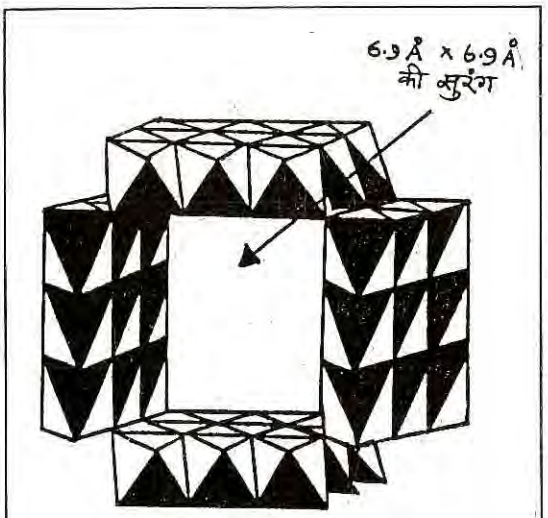

चित्र-3 : टोडारकाइट की संरचना

त्रिसंयोजी धातु आयन एक द्विसंयोजी के लिए द्विसमावयवी प्रतिस्थापक होता है । इस प्रकार के प्रतिस्थापन से अंतःपरतीय स्थान में ऋणायन से संतुलित धन आवेशित पर्त की उत्पत्ति होती है । जैसा कि चित्र-2 में प्रदर्शित किया गया है । इसके अतिरिक्त तीन मुख्य संरचनाएं भी पहचानी गयी हैं । ये हैं : हाइड्रोटेल्साइट $Mg_nAl(OH)_{2n+2x}$, पाइरोऑराइट एवं सोग्रेनाइट का संयोजित सूत्र $Mg_6Fe_2(OH)_{16}CO_3.4H_2O$ है। बहुत से अन्य परतीय द्विहाइड्रॉक्साइड (एल. डी. एच.) के संश्लेषण की विधियों का भी वर्णन किया गया है । 1986 में एल. डी. एच. से विभिन्न प्रकार के ऋणायनों के विनिमय के ऊपर प्रकाश डाला गया एवं एकल ऋणायनों के तुलनात्मक अध्ययन कर घटते क्रम में उनकी एक सूची $OH^- > F^- > Cl^- > Br^- > NO_3^- > I^-$ बनायी गयी । द्विसंयोजी ऑक्सी ऋणायन के लिए तुल्य चयनात्मक क्रम तैयार किये गये और उनको $HPO_4^{2-} > CrO_4^{2-} > SO_4^{2-} > MoO_4^{2-}$ के क्रम से व्यवस्थित किया गया है ।

(स) सुरंगनुमा संरचना युक्त विनिमायक :

सुरंगमा संरचना वाले विनिमायकों में से MnO_2, होल्लन्डाइट्स और टोडोरोकाइट्स प्रमुख हैं । उपरोक्त में से पहला वाला यौगिक मैंग्नीज-ऑक्सीजन के ऑक्टाहेड्रा संरचना आपस में एक दूसरे के कोने द्वारा साझा करके 2 x 2 की दो श्रृंखलाएं बनाते हैं । ये दो श्रृंखलाएं आपस में एक कोने से दूसरे कोने तक संयुक्त होकर सुरंग का निर्माण करती हैं । इस 2 x 2 की सुरंग में 4.6 Å की जगह होती है । इस सुरंग में जल धनायन जाकर बैठते हैं । इसके सरल उदाहरण खनिज क्रिप्टोमिलेन, $KMn_8O_{16}.XH_2O$ या होल्लन्डाइट, $BaMn_8O_{16}.XH_2O$ हैं । संश्लेषित अनुरूप में हाइड्रोनियम आयन एवं दूसरे धनायन सुरंग में जाकर बैठ जाते हैं एवं दूसरे आयनों से आसानी से विनिमय प्रक्रिया में भाग लेते हैं ।

टोडोरकाइट्स में 3 x 3 के MnO_6 ऑक्टाहेड्रल संरचना से 6.9Å x 6.9Å परिमाप की सुरंग बनती है जैसा कि चित्र-3 में दर्शाया गया है । अभी भी इस प्रकार के विनिमायकों के आयनों के आदान-प्रदान के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना शेष है ।

अपने कुछ विशिष्ट लक्षणों के कारण अकार्बनिक आयन विनिमायक की उपयोगिता कार्बनिक आयन विनिमायकों से कहीं ज्यादा सिद्ध हो रही है । जैसे गर्म कार्बनिक विलायकों, उच्च दाब या क्षयकारी माध्यम में जहां पर आयनों का पृथक्करण कार्बनिक विनिमायकों द्वारा लगभग असंभव होता है, वहां पर ये सफलतापूर्वक उपयोगी साबित हो चुके हैं । इसके अतिरिक्त इनकी अत्यधिक उच्च चयनात्मक प्रकृति के कारण जहां पर किसी आयन विशेष को परिशुद्ध रूप में प्राप्त करने की आवश्यकता होती है, उस दशा में तुलनात्मक ढंग से अध्ययन करने पर कार्बनिक विनिमायकों से अच्छे साबित हुए हैं । बहुत से अकार्बनिक विनिमायकों को कार्बनिक के साथ समाविष्ट कर मिश्रित विनिमायक के रूप में प्रयोग में लाया जाता है । कार्बन आधारित अकार्बनिक विनिमायक, सोवियत संघ जैसे देश में शरीर के भीतर गये रेडियोधर्मी पदार्थों के निष्कासन के लिए भी सफलतापूर्वक प्रयोग किये गये एवं उनकी उपयोगिता महत्त्वपूर्ण साबित हुई । कुछ नये प्रकार जैसे सुरंगनुमा संरचना युक्त अकार्बनिक विनिमायकों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए अभी अनुसंधान करना शेष है । भविष्य में इनकी उपयोगिता के संबंध में और

भी बहुत कुछ ज्ञात होगा । इसके अतिरिक्त नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन के दौरान विखंडन उत्पाद के साथ कुछ मूल्यवान तत्त्वों का निर्माण होता है, उनको पृथक करने में अब ये अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं । इनके प्रयोग में मात्र एक अड़चन आती है कि ये गोल दानेदार आकृति में उपलब्ध नहीं हैं ! किंतु इस दिशा में प्रयत्न जारी हैं । सोल जेल विधि से ऑक्साइडों के सूक्ष्म गोले बनाने का काम अनेक प्रयोगशालाओं में चल रहा है । इससे अकार्बनिक विनिमायकों के प्रसार में वृद्धि होगी । जब ये मनचाही आकृति में प्राप्त किये जा सकेंगे उस समय ये शत प्रतिशत, कार्बनिक विनिमायक के प्रतिद्वंदी के रूप में सामने आयेंगे ।

❐❐❐

चतुर संरचनाएं

(पृष्ठ -28 का शेष भाग)

है । यह व्यवस्था अभिकल्पन, निर्माण के समय ही कर ली जाती है किंतु जब इसका उपयोग होता है उस समय मात्र उपयोगकर्ता ही विद्यमान होते हैं और सुरक्षा भी उनकी ही दांव पर होती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'चतुर संरचनाओं' में चतुरता का भरना एक सुनियोजित कार्यवाही है जो अभिकल्पन के समय से प्रारंभ होती है । पदार्थों का चुनाव, उनके गुणों में परिवर्तन की योजना, संवेदकों का लगाना, गणकों की स्थापना और यदि आवश्यक है तो निर्माण के समय संवेदकों, तारों के जाल को संरचना के अंदर बिछाने की योजना भी अभिकल्पन के समय ही करनी पड़ती है । निर्माण के समय इनका सही स्थान पर होना, सही रूप से संरचना में स्थापित करना निर्माणकर्ता का र्य है । उपयोग के समय, उपयोगकर्ता की यह जिम्मेदारी है कि वह इस प्रणाली का समय-समय पर रख-रखाव करता रहे जिससे कि आपत्तिकाल में वह कार्य कर सके । अंत में मानव निर्मित चतुर संरचना तभी चतुर रह पायेगी, जब उसकी सभी प्रणालियां ठीक ढंग से कार्य करती रहें और वह मानवीय क्षति को बचा सकें । प्रकृति प्रदत्त मानव भी तभी चतुर कह लायेगा, जब वह प्रत्येक परिस्थिति में सही गणना कर, सही कार्यवाही कर अपने आप को और इस पृथ्वी को सुरक्षित बचा सके । यदि ऐसा नहीं हो पाता तो एक दिन यह सृष्टि किसी अनजाने बलों के कारण पुनः नष्ट होकर, भविष्य में नयी सृष्टि को जन्म देगी ।

❐❐❐

"वैज्ञानिक" के प्रमुख संपादक सम्मानित

स्वतंत्रता की पचासवीं वर्षगांठ के अवसर पर विज्ञान के प्रचार प्रसार में संलग्न देश की प्राचीनतम संस्था ***'विज्ञान परिषद प्रयाग'*** *द्वारा* ***"वैज्ञानिक"*** *के प्रमुख संपादक* ***डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल,*** *भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई, को हिंदी के माध्यम से विज्ञान को लोक प्रिय बनाने के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हेतु* ***'विज्ञान वाचस्पति'*** *की उपाधि से सम्मानित करने के लिए चुना गया है ।*

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1997) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर

अरविंद कुमार,
प्रगत पुंज भौतिकी अनुभाग,
त्वरक विकास प्रयोगशाला,
प्रगत प्रौद्योगिकी केंद्र, इंदौर-452 013

अभी तक के आविष्कारों में सबसे अधिक प्रकाशिकीय केंद्रित शक्ति का स्रोत मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर अपने आप में नया तथा अन्य लेजरों से भिन्न और संपाती प्रकाशिक स्रोतों के लिए एक अग्रणी स्रोत है। इस स्रोत की सबसे बड़ी विशेषता इसकी विस्तृत तरंगीय अनुरूपण क्षमता (Tunebility) है अर्थात इससे सभी तरंग दैर्घ्यों पर विकिरण प्राप्त किया जा सकता है। जिसके कारण विज्ञान व चिकित्सा के क्षेत्र में मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

सबसे पहले (1970 में) मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर बनाने तथा 1976 में कार्यरूप में परिणित करने का प्रावधान स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के जॉन एम. जे. मैडे ने किया था। शुरू में मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर के सिद्धांत व कार्य प्रणाली का क्वान्टम-गतिकी से लेकिन बाद में पारंपरिक गतिकी (Classical Mechanics) की सहायता से सरलता के साथ पूर्ण रूप से वर्णित किया गया। इस लेजर की उच्च शक्ति तथा विस्तृत गुणता ने संसार के सभी शक्तिशाली तथा धनी राष्ट्रों को आकर्षित किया है; और आज संसार के सभी प्रमुख देश - अमरीका, रूस, फ्रांस, इटली, जापान, ब्रिटेन, चीन, इसराइल, जर्मनी तथा भारत आदि मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र के निर्माण तथा विकास के कार्य में लगे हुए हैं। वर्तमान स्थिति तालिका-I में स्पष्ट है। मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र के निर्माण में बहुत अधिक खर्च आता है तथा अत्यंत उच्च कोटि की अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है। इसका अत्यधिक महंगा होना तथा आकार में बड़ा व भारी होना ही इसकी सबसे बड़ी कमियां हैं। अतः इसे कम खर्चीला तथा छोटे आकार का बनाने के प्रयास जारी हैं। मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र के क्षेत्र का यही एक मुख्य उद्देश्य बन गया है जिससे सभी उपयोगी क्षेत्रों के उपभोक्ता इसका लाभ ले सकेंगे।

मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर के तीन महत्त्वपूर्ण भाग होते हैं : इलेक्ट्रॉन त्वरक, तरंगीय चुंबकीय क्षेत्र जनक 'तरंगण' (Undulator) तथा अनुनादक (Resonator) (चित्र-1)। इलेक्ट्रॉन त्वरक से निकलकर जब इलेक्ट्रॉन-पुंज तरंगण से गुजरता है तब वह ज्या-तरंगीय (Sinusoidal) चुंबकीय क्षेत्र के लंबवत एक बल का अनुभव करता है। अतः इलेक्ट्रॉन पुंज भी तरंगण के अंदर ज्या तरंग के रूप में कंपन करता है तथा इलेक्ट्रॉन पुंज एक त्वरण का अनुभव करता है। यह एक ध्यान देने योग्य तथ्य है कि कोई भी त्वरित आवेशित कण विकिरण उत्सर्जित करता है। अतः इलेक्ट्रॉन पुंज से उत्सर्जित विकिरण (जिसको सिंक्रोट्रॉन विकिरण कहते हैं) अनुनादक के दर्पणों से टकराकर वापस इलेक्ट्रॉन पुंज से क्रिया करता है। इलेक्ट्रॉन पुंज तथा विकिरण की क्रिया से इलेक्ट्रॉन के छोटे-छोटे गुच्छे बन जाते हैं जो आपस में विकिरण की तरंग-लंबाई के बराबर दूरी पर होते हैं (चित्र-2)। इन गुच्छों से उत्सर्जित विकिरण एक ही कला में होता है। सभी गुच्छों से उत्सर्जित एक समान कला वाला विकिरण मिलकर जब शक्तिशाली तथा तीव्र हो जाता है तो इसका कुछ भाग अनुनादक के आंशिक-पारदर्शी दर्पण से बाहर आ जाता है जो कि लेजर कहलाता है। मुक्त इलेक्ट्रॉन लेजर से मिलने

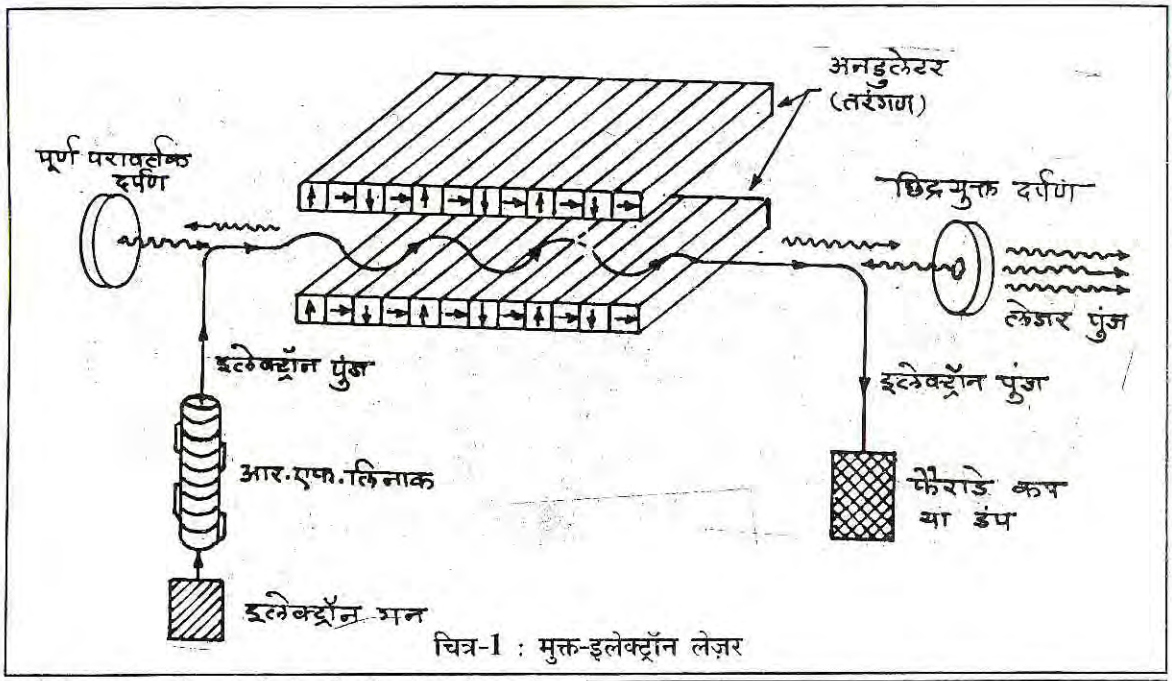

चित्र-1 : मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र

वाले लेजर पुंज की तरंग दैर्ध्य इलेक्ट्रॉन पुंज की ऊर्जा, तरंगण के चुंबकीय क्षेत्र तथा अनडुलेटर के आवर्त की लंबाई पर निर्भर करती है। इसको निम्नलिखित सूत्र से दर्शाया जाता है-

$$\lambda_L = \frac{\lambda_\omega}{2\gamma^2} \left[1 + \frac{e^2 B_\omega^{\ 2} \lambda_\omega^{\ 2}}{4\pi^2 m^2 C^2}\right]$$

λ_L = लेजर पुंज की तरंग-दैर्ध्य
γ = लारेन्स गुणक,
B_ω = तरंगण का चुंबकीय क्षेत्र
λ_ω = तरंगण की तरंग-दैर्ध्य
e, m = इलेक्ट्रॉन का आवेश तथा द्रव्यमान
C = प्रकाश की गति

इलेक्ट्रॉन त्वरकों की सीमाओं के कारण विभिन्न तरंग-दैर्ध्यों पर लेजर-पुंज प्राप्त करने के लिए विभिन्न त्वरक प्रयोग में लाये जाते हैं (चित्र-3)। मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर के लिए प्रयुक्त होने वाले त्वरकों के लिए उनका छोटे आकार का होना तथा उनसे मिलने वाले पुंज का उच्च कोटि का होना अत्यंत आवश्यक है। आजकल इलेक्ट्रॉन त्वरकों पर काफी अनुसंधान हो रहा है तथा

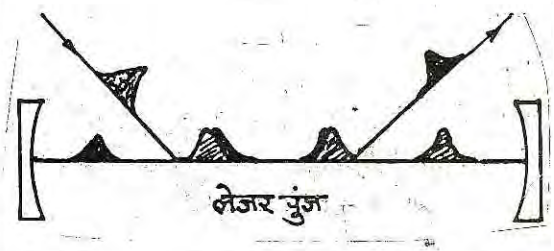

चित्र-2 : मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र अनुनादक की आर. एफ. लिनाक से निकले पल्स इलेक्ट्रॉन पुंज पर क्रिया

साथ ही साथ इलेक्ट्रॉन त्वरक प्रौद्योगिकी का बहुत अधिक विकास हुआ है। इलेक्ट्रॉन त्वरक प्रौद्योगिकी की चरम-परिणति तब हुई जब 1960 में स्टेनफोर्ड रैखिक त्वरक केंद्र (SLAC) ने 20 गीगा इलेक्ट्रॉन वोल्ट (GeV) ऊर्जा का दो मील लंबा रैखिक त्वरक बनाया। संसार भर में मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र के लिए प्रयुक्त हो रहे विभिन्न इलेक्ट्रॉन त्वरकों के नाम इस प्रकार हैं - माइक्रोट्रॉन प्रेरित रैखिक त्वरक, रेडियो आवृति रैखिक त्वरक (RF Linac), (Van-de-

तालिका - 1 : वर्तमान में विद्यमान तथा भविष्य में बनने वाले मुक्त इलेक्ट्रॉन लेज़र

मु. इ. लेजर कहां स्थापित हैं	तरंग दर्ध्य (माइक्रोन) μm	ऊर्जा (मैगा इ. वो.)	धारा (एंपियर)	अनडुवेटर में आवर्तो की संख्या	त्वरक का प्रकार
स्टेनफोर्ड (FIRFEL)	80-200	4	8	50	रेडियो आवर्ती लिनियर त्वरक
टोकियो (UT-FEL)	43	13	20	40	(RF Linac)
ओसाका (ISIR)	30	17	50	32	"
स्टेनफोर्ड (FIREFLY)	15-65	15-32	14	25	"
हिमेजी (LEENA)	65	5.4	10	50	"
वान्डर बिल्ट (FELI)	2.2-9.6	43	50	52	"
ड्यूक (मार्क III)	3	44	20	47	"
ओरसे (सुपर ACO)	0.35	20	0.1	2x10	स्टोरेज रिंग
ओकाजाकी (UVSOR)	0.3	500	5	2x8	"
प्रस्तावित					
फ्लोरिडा (CRFEL)	200-600	1.7	02	185	"
नीदरलैण्ड (TEUFEL)	180	6	350	50	'इलेक्ट्रास्टेटिक त्वरक
बोइंग (KWFEL)	0.2-4	120	500	220	RF-लिनाक
सीबेफ (IRFEL)	2.5-2.5	200	36	2x12	"
डेसी (TTFI)	0.042	390	500	490	"
स्टेनफोर्ड (LCLSI)	0.004	7000	2500	723	"
डेसी (TESLA)	0.0001	35000	5000	1200	"

Graaff) त्वरक तथा स्टोरेज रिंग या इलेक्ट्रॉन संग्राहक आदि । लेकिन आजकल ज्यादातर मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़रों में रेडियो आवृत लिनाक का ही प्रयोग हो रहा है । उच्च कोटि का इलेक्ट्रॉन पुंज देने वाला इलेक्ट्रॉन त्वरक ही मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर का सबसे महंगा तथा बड़ा भाग है । इसके लिए प्रयुक्त होने वाले इलेक्ट्रॉन पुंज की ऊर्जा सामान्य तौर पर 20-200 लाख इलेक्ट्रॉन (MeV) वोल्ट ही ली जाती है । ज्यादा लब्धि प्राप्त करने के लिए इलेक्ट्रॉन पुंज की धारा का मान अधिक (1-1000 एंपियर) रखा जाता है । इसमें प्रयोग होने वाले इलेक्ट्रॉन पुंज की गुणता में सुधार के लिए, इलेक्ट्रॉन गन तथा त्वरक में इलेक्ट्रॉन पुंज प्रविष्ट कराने वाले इन्जेक्टर के विकास का कार्य वरीयता से चल रहा है । क्योंकि मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र में प्रयुक्त होने वाले इलेक्ट्रॉन पुंज का उच्च-कोटि का होना नितांत आवश्यक है ।

मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र का दूसरा मुख्य भाग तरंगण है जो एक चुंबकीय उपकरण है । इसका कार्य तरंगीय चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न कर इससे गुजरने वाले इलेक्ट्रॉन पुंज को त्वरण प्रदान करना तथा इलेक्ट्रॉन पुंज विकिरण का उत्सर्जन करना है । प्रथम मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र में प्रयुक्त तरंगण का निर्माण विद्युत धारा द्वारा चक्राकार (Helix) चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न कराने के लिए किया गया था । लेकिन आजकल ज्यादातर मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजरों में प्रयुक्त तरंगण स्थायी चुंबकों की सहायता से ज्या-क्षेत्र उत्पन्न करने के लिए बनाये जाते हैं । स्थायी चुंबकों को एक दूसरे के पास हॉलबैक संरचना या हॉल बैक विधि में रखा जाता है (चित्र-1) । एक ही तरंग दैर्ध्य पर लेज़र-पुंज प्राप्त करने के लिए तथा इलेक्ट्रॉन पुंज की अधिक-से-अधिक ऊर्जा द्वारा विकिरण निकालने के लिए तरंगण के आवर्तों का तरंग दैर्ध्य एक समान क्रम से घटाया जाता है इसे टेपर्ड तरंगण (Tapered Undulator) कहा जाता है । इस नयी विचारधारा में एक ही इलेक्ट्रॉन-पुंज प्रयुक्त करके दो अलग-अलग तरंग दैर्ध्यों पर विकिरण प्राप्त करने के लिए इलेक्ट्रॉन-पुंज को क्रम से दो तरंगणों से गुजारा जाता है । इस तरह

तालिका - 2 : तरंगण के कुछ विनिर्देशन

प्राचल	मान
तरंग-दैर्घ्य	50 मिलीमीटर
आवर्तों की संख्या	50
लंबाई	2.50 मीटर (1.25 मी. + 1.25 मी.)
चुंबकों का आमाप	(12.5 x 12.5 x 50) मिमी.^{3}
चुंबकों का पदार्थ	नियोडिमियम फैरस बोरॉन (NdFeB)

बना मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर दो वर्णों वाला मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर कहलाता है । प्रगत प्रौद्योगिकी केंद्र, इंदौर में बनने वाले मुक्त इलेक्ट्रॉन लेजर के लिए तरंगण का विवरण तालिका-2 में दिया गया है ।

तरंगण के अंदर इलेक्ट्रॉन पुंज तथा लेज़र पुंज के बीच अत्याधिक क्रिया के लिए आवश्यक है कि इलेक्ट्रॉन पुंज उसके एकदम मध्य से गुजरे, जहां पर चुंबकीय क्षेत्र पूर्णरूप से ज्या के रूप में होता है । इलेक्ट्रॉन पुंज के गुणों तथा स्थिति को जानने के लिए इलेक्ट्रॉन पुंज नैदानिकी (Diagnostics) से पुंज की सभी विशेषताओं को परखा जाता है । फिर भी कुछ मुख्य गुण जो कि इलेक्ट्रॉन पुंज को मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर में प्रयुक्त करते समय जानना अत्यंत आवश्यक है, इस प्रकार हैं (1) इलेक्ट्रॉन पुंज की स्थिति, (2) इलेक्ट्रॉन पुंज की धारा, (3) इलेक्ट्रॉन पुंज में इलेक्ट्रॉनों की ऊर्जा का अत्यधिक अंतर या ऊर्जांतर (Enrgy spread), (4) इलेक्ट्रॉन पुंज की उत्सर्जनता (Emittance) ।

किसी भी इलेक्ट्रॉन पुंज के लिए उसकी उत्सर्जनता नियत रहती है जो पुंज की गुणता का पता करने के लिए एक मुख्य कारक है । इलेक्ट्रॉन पुंज का कला क्षेत्र (Phase space) में क्षेत्रफल पुंज की उत्सर्जिता कहलाता है । संसार के सभी अधिक ऊर्जा वाले त्वरक, स्टोरेज रिंगों तथा मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजरों के लिए पुंज नैदानिकी की जाती है । इलेक्ट्रॉन पुंज नैदानिकी के विकास के लिए निरंतर प्रयास जारी हैं ताकि पुंज की गुणवत्ता को उन्नत किया जा सके । सबसे ज्यादा प्रयोग में आने वाली विधि में चार या अधिक चालक इलेक्ट्रोडों को पुंज के चारों ओर लगाकर, प्रेरण के कारण उत्पन्न संकेतों का मान ज्ञात करके इलेक्ट्रॉन पुंज की स्थिति

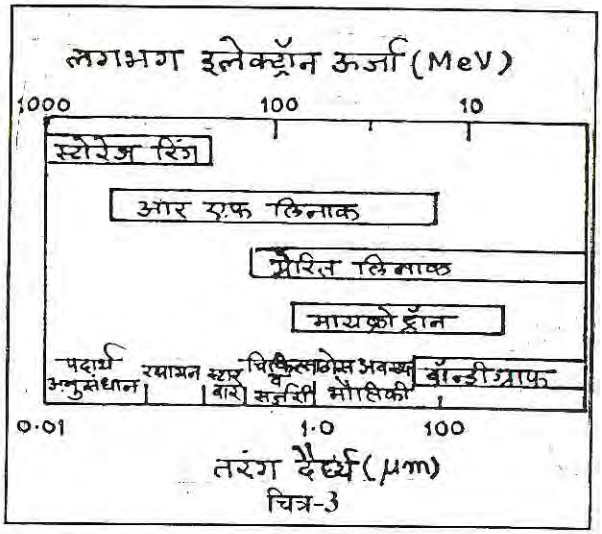

चित्र-3

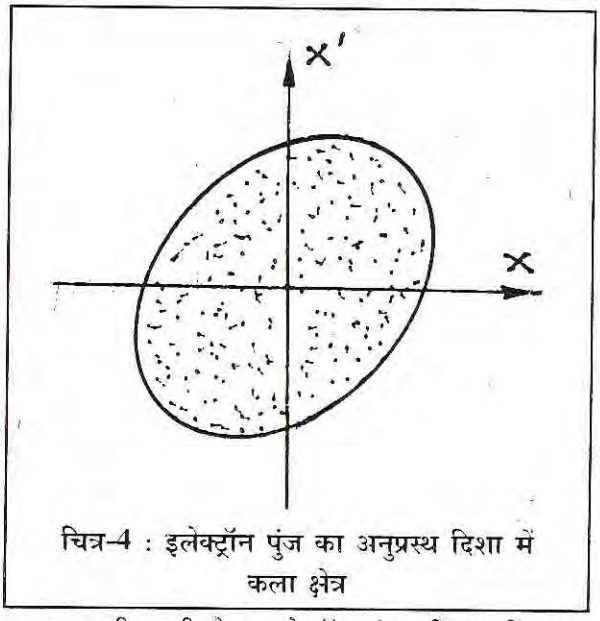

चित्र-4 : इलेक्ट्रॉन पुंज का अनुप्रस्थ दिशा में कला क्षेत्र

ज्ञात की जाती है । इलेक्ट्रॉन पुंज की आवृति बहुत अधिक (लगभग 3 अरब हर्ट्ज यानी 3 गीगा हर्ट्ज) होने के कारण स्थिति ज्ञात करने वाली इलेक्ट्रॉनिकी विकसित करना एक चुनौती भरा कार्य है । इस विधि से इलेक्ट्रॉन पुंज की गुणता भी बनी रहती है । आजकल विकसित देशों में इस लेजर में प्रयुक्त इलेक्ट्रॉन पुंज की स्थिति का पता करने के लिए एक नयी विधि 'प्रकाश उत्सर्जन विकिरण पट्टिका' (optical transition

तालिका - 3 : लंबी तरंग-दर्घ्य पर मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर

मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर	तरंग दैर्घ्य/आवृति (मिमी./गीगहर्ट ज)	शक्ती (मैगावॉट)	समय (माइक्रो सेकंड)	अनडुलेटर का आवर्त (तरंग दैर्घ्य)/ K-पैरामीटर/प्रकार
UCSB	<2.5/ 120	6	<0.015	7.14/1.0 K (समतलीय)
KEK (Japan)	32/9.4	0.015	150	16/1.5 K समतलीय
UL	30/9.9	CW (सतत तरंग)	10^{-6}	1.9/0.03 K समतलीय
NRL	8/35	1.0	(निर्माणधीन)	0.64/0.2/ CH
UT	8/35	0.05	140	11/3.1K समतलीय
IAP	6.7/45	0.025	7	24/0.07 K समतलीय
CU	2/150	0.15	5	1.9/0.25 K चक्राकार
DU	0.4/650	10.0	अभिकल्पन अध्ययन	3/1.4 K समतलीय
FOM	1/260	$1x10^5$	निर्माणधीन	2/0.67 K समतलीय
DLR	3/100	$1.5x10^{-2}$	1	2/0.28 K चक्राकार
ENEA	0.6/500	5.5	निर्माणधीन	2.5/1.7 K समतलीय

radiation foils) का उपयोग किया जाता है। जिससे पांच माइक्रोन की शुद्धता तक इलेक्ट्रॉन पुंज की स्थिति ज्ञात की जा सकती है। यह एक अत्याधुनिक लेकिन महंगी विधि है। कला क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिए पुंज से पांच माइक्रोन मोटा एक तार गुजार कर या पुंज के मार्ग में उद्दीपन पट्टिका रखकर इलेक्ट्रॉन पुंज की रूपरेखा (Profile) ज्ञात करके पुंज की उत्सर्जिता ज्ञात कर ली जाती है (चित्र-4)। इस विधि से इलेक्ट्रॉन पुंज पर प्रभाव पड़ता है तथा पुंज कि गुणता भी खराब हो सकती है। इलेक्ट्रॉन पुंज की धारा का मान फैराडे कप तथा तीव्र धारा परिवर्तक (Fast Current Transformer) का प्रयोग करके निकाला जाता है। एफ. सी. टी. का प्रयोग ऐसे अत्यधिक आवृति वाले आवेशित कण-पुंजों पर किया जाता है जो कि अत्यधिक गति में हों। फैराडे कप इलेक्ट्रॉन पुंज को रोक लेता है। अतः ज्यादा प्रयोग में नहीं आता। इलेक्ट्रॉन पुंज का ऊर्जांतर ज्ञात करने के लिए चुंबकों का प्रयोग किया जाता है जो इलेक्ट्रॉन पुंज को मोड़ देती हैं। अधिक ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन बड़ी त्रिज्या का चक्कर तथा कम ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन कम त्रिज्या का चक्कर बनाते हैं जिससे इलेक्ट्रॉनों की ऊर्जाओं का अंतर ज्ञात दिया जाता है।

अनुनादक, मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर का तीसरा मुख्य भाग है। अनुनादक का कार्य प्रकाशिक पुंज तथा इलेक्ट्रॉन पुंज की अत्यधिक क्रिया कराना तथा परावर्तन से प्रकाशिक पुंज की तीव्रता बढ़ाना है। अनुनादक मुख्यतया दो दर्पणों से मिलकर बना होता है। जो तरंगण के दोनों ओर लगे होते हैं। एक दर्पण पूर्ण परावर्तक (>99.9%) होता है तथा दूसरे दर्पण में एक छोटा (कुछ मिमी के बराबर) सा छिद्र होता है जिससे लेजर-पुंज बाहर आ जाता है। यह छिद्र वाला दर्पण भी अधिक परावर्तक क्षमता वाला होता है। अन्य लेजरों में छिद्र युक्त दर्पण के स्थान पर अर्द्ध परावर्तक दर्पण होता है जो लेजर पुंज के कुछ भाग को बाहर जाने देता है। लेज़र पुंज की नैदानिकी के लिए फेबरी-पेरो व्यतिकरणमापी का प्रयोग किया जाता है। लेजर पुंज की ऊर्जा ज्ञात करने के लिए जूल-मीटर का प्रयोग किया जाता है। अनुनादक किसी भी लेजर का एक मुख्य भाग होता है। अनुनादक का आकार ही लेजर पुंज के ह्रास का निर्धारण करता है। अतः अनुनादक का आकार ऐसा रखा जाता है कि लेजर पुंज की क्षति कम-से-कम हो। इसके लिए अनुनादक के बहुत से कारकों (पैरामीटर्स) का निर्धारण किया जाता है। चित्र-1 में दर्पणों को दर्शाया गया है।

मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर से उन सभी आवृतियों पर विकिरण प्राप्त किया जा सकता है, जिन पर अन्य किसी भी स्रोत से तीव्र पुंज प्राप्त नहीं हो सकता है। अतः इसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। किसी भी स्रोत को प्रायोगिक सुविधा के रूप में उपयोग करने के लिए उस उपकरण या स्रोत का विश्वसनीय होना जरूरी है। मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर को चलाने के लिए आवश्यक उच्च तकनीक की वजह से इसको प्रायोगिक सुविधा बनाने के लिए इसका विश्वसनीय होना जरूरी है। अभी तक बहुत कम संख्या में मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजरों का उपयोगी सुविधा के रूप में प्रयोग हो रहा है। इस सब के बावजूद मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर का उपयोग अनुसंधान, चिकित्सा, औद्योगिक विकास, रक्षा तथा अन्य बहुत से क्षेत्रो में किया जा सकता है।

मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर का प्रथम उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए किया जाता है। इस लेजर के पुंज की अधिक तीव्रता, उच्च शक्ति और सभी आवृतियों पर लेजर पुंज मिलने से पराबैंगनी तथा दूर अवरक्त स्पेक्ट्रम को भी प्राप्त किया जा सकता है। इस लेज़र का उपयोग जीवविज्ञान तथा रसायन के क्षेत्र में भी हो सकता है। क्रोमोसोम तथा जीव पदार्थ डी. एन. ए. का दूर अवरक्त स्पेक्ट्रम देखने तथा इसके अरैखिक प्रक्रम का अध्ययन करने के लिए मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर एक उत्तम स्रोत है। लेजर पुंज तथा ऊतकों की आपसी अनुक्रिया के प्रभाव का अध्ययन चिकित्सा तथा सर्जरी के क्षेत्रों के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध होगा। ऊतक प्रभाव लेजर पुंज की तरंग-दैर्ध्य तथा पल्स लंबाई पर निर्भर करता है। आजकल औद्योगिक क्षेत्रों में भी मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर अर्द्ध-चालकों के सूक्ष्म संरचना परिपथों (सर्किटों) लिए बहुत ही उपयोगी है। सूक्ष्म प्लेटों (माइक्रो चिप्स) पर सूक्ष्म सर्किटों को लगाने के लिए पराबैंगनी लेज़र विकिरण का उपयोग किया जा सकता है। पराबैंगनी लेज़र पुंज गैस या द्रव की सिलिकॉन चिप के साथ रसायनिक क्रिया विधि को आरंभ करता है। अत्यधिक शक्ति होने के कारण मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर का उपयोग नाभिकीय (संलयन) तथा रक्षा के लिए भी किय जा सकता है। लेज़र द्वारा ऊर्जा को अत्यधिक दूरी तक ले जाने की क्षमता के कारण मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र का उपयोग शत्रु पक्ष के प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करने के लिए भी किया जा सकता है। रक्षा की दृष्टि से यह एक उत्तम स्रोत है। पृथ्वी की कक्षा में दर्पण लगाकर लेजर पुंज से कहीं से भी होने वाले विनाशकारी मिसाइलों के हमले को नाकाम किया जा सकता है। इसका उपयोग संवृत प्लाज्मा संलयन (Plasma Confinenment Fusion) के लिए भी किया जा सकता है। अतः यह एक बहुत उपयोगी युक्ति है। यह अन्य सभी लेजरों से भिन्न है। इससे ऐसी किसी भी तरंग-दैर्ध्य पर विकिरण प्राप्त किया जा सकता है, जिस पर अन्य किसी भी परंपरागत लेजर से केंद्रित लेज़र पुंज प्राप्त करना असंभव है। आज कल ये लेजर अधिकतर पराबैंगनी तथा दूर अवरक्त क्षेत्र में कार्यरत हैं। इसके उपयोग से एक्स-किरण लेज़र तथा गामा किरण लेज़र बनाना संभव हो सकेगा। इस लेज़र का उपयोग इलेक्ट्रॉन त्वरक के रूप में भी किया जा सकता है जिससे संसार में अभी तक प्राप्त ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन पुंजों की ऊर्जा को अत्यधिक मात्रा में बढ़ाया जा सकता है। इसको 'उत्परवर्ती मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेज़र' (Inverse Free Electron Laser) भी कहते हैं। इस लेजर को सस्ता तथा छोटा बनाने के प्रयास निरंतर प्रगति पर हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर भविष्य में विभिन्न क्षेत्रों में विकास तथा अनुसंधान के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

❐❐❐

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1997) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

पेय जल में विषालु कार्बनिक पदार्थों का मूल्यांकन

डॉ. नीता ठक्कर* एवं राजश्री मुडे**
राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी संस्थान,
नेहरू मार्ग, नागपुर 440 020

आज के तकनीकी युग में जीवन में, रसायनों का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। रासायनिक कारखानों से बहुत बड़ी मात्रा में रसायनों का उत्पादन होता है। जहां एक ओर मानव हित के लिए इन रसायनों का उपयोग होता है वहीं दूसरी ओर अपशिष्ट रूप में ये जल, थल और वायु प्रदूषण का कारण बनते हैं। आज के दौर में बढ़ते हुए औद्योगीकरण के साथ-साथ विविध रसायनों के उपयोग की मात्रा में भी वृद्धि होती जा रही है जिसका दुष्परिणाम प्रदूषण के रूप में हमारे सामने एक विकराल समस्या के रूप में खड़ा है। अतः वातावरण में इनकी मात्रा का मूल्यांकन करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। प्रस्तुत लेख में पेय जल के विभिन्न विषालु पदार्थों का वर्णन किया गया है।

पर्यावरण में विषालु पदार्थों का अनुपात उनकी कुल संख्या एवं उनका भविष्य निर्धारित करने वाली प्रमुख प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है। ये रासायनिक पदार्थ पर्यावरण के कौन से घटक को (जल, थल अथवा वायु) प्रदूषित करेंगे यह इनके परिवहन के साधनों पर निर्भर करता है। विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा जल, थल एवं वायु में इन पदार्थों का रूपांतरण होता रहता है जिसके कारण, मूल पदार्थ से, नव परिवर्तित स्वरूप के कम अथवा अधिक विषैला होने की संभावना होती है। इन प्रक्रियाओं की गति रासायनिक पदार्थों एवं पर्यावरण के अंग विशेष (जल, थल एवं वायु) पर निर्भर करती है जहां ये पाये जाते हैं। रसायनों की अंतःक्रिया और विभिन्न प्रक्रियाओं का सम्मिलित प्रभाव पर्यावरण में विषैले पदार्थों के भविष्य एवं जीवाणुओं पर होने वाले प्रतिकूल प्रभाव को निर्धारित करते हैं। चित्र-1 में विषैले कार्बनिक पदार्थों का पर्यावरण में प्रवेश एवं उसके विभिन्न घटकों में उनकी उपस्थिति को दर्शाया गया है।

गत दो दशकों से विभिन्न प्रकार के रसायनों का जन्म हुआ है जिनमें से कई कर्क (कैंसर) रोग के लिए उत्तरदायी हैं अथवा कर्क रोग पैदा करने वाले द्वितीयक रसायन उत्पन्न करते हैं। साथ ही कई रसायन आनुवंशिक उत्परिवर्तनकारी (Mutagenic) भी साबित हुए हैं। पानी में विद्यमान, इन विषैले रासायनिक पदार्थों से मनुष्य के स्वास्थ्य पर होने वाले परिणामों का अध्ययन कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों में किया जा रहा है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' (WHO)और 'संयुक्त राज्य पर्यावरण संरक्षण एजेन्सी' (USEPA) जैसी संस्थाओं द्वारा स्वास्थ्य की दृष्टि से, पेय जल में प्रमुख विषैले पदार्थों की निरापद सीमा निर्धारित की गयी है।

पेय जल में पाये जाने वाले सर्वपरिचित 750 प्रदूषकों में 600 विषैले कार्बनिक पदार्थों में से अधिकांश मानव निर्मित हैं।

संदूषण के स्रोत :

पेय जल में पाये जाने वाले कार्बनिक रासायनिक प्रदूषकों के स्रोतों को हम निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं :-

1. प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न कार्बनिक पदार्थ, उदाहरणतः ह्यूमिक (Humic) एवं फलविक (Fulvic) अम्ल।

*वैज्ञानिक ; **प्रोजेक्ट सहायक

2. जल शुद्धिकरण प्रक्रिया के दौरान प्रवेश करने वाले कार्बनिक पदार्थ, उदाहरणत: ट्राइहेलोमीथेन, एक्रीलामाइड ।
3. नियंत्रित स्रोतों से प्राप्त कृत्रिम रसायन, उदाहरणत: उद्योगों के कार्बनिक बहि: स्राव ।
4. अनियंत्रित स्रोतों से प्राप्त रसायन, उदाहरणत: पीड़कनाशी एवं उर्वरक ।
5. औषधियों के रूप में उपयोग होने वाले कार्बनिक पदार्थ, उदाहरणत: क्लोरोफॉर्म और मिथायल-सैलिसाइलेट (Methylsalicylate) ।

पेय जल में पाये जाने वाले 90 % कार्बनिक पदार्थ, जिनकी गणना कुल जैविक (कार्बनिक) कार्बन (TOC) के रूप में की जाती है, प्राय: विषैले नहीं होते हैं। अन्य कार्बनिक पदार्थ जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, उनका जल में प्रवेश कई अन्य शुद्धिकरण प्रक्रियाओं द्वारा होता है, यथा –

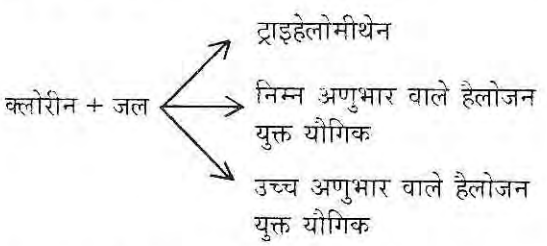

उदाहरणार्थ : मुक्त क्लोरीन, पानी में हाइपोक्लोरस अम्ल बनाती है। यह अम्ल प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थों के साथ जटिल प्रक्रिया द्वारा ट्राइहेलोमीथेन, क्लोरीफिनॉल, क्लोरोएसिटिक अम्ल बनाती है । यह प्रक्रिया केवल ट्राइहेलोमीथेन बनाने तक ही सीमित नहीं रहती, इसके साथ-साथ उच्च अणुभार वाले यौगिक भी बनते हैं जिनका स्वास्थ्य पर बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार इन प्रक्रियाओं में हैलोजन युक्त फिनॉल जैसे निम्न अणुभार वाले यौगिक भी बनते हैं । जल उपचार प्रक्रिया के दौरान पानी में डाले जाने वाले कुछ अन्य रासायनिक पदार्थ भी हैं जैसे- स्कंदक (Coagulants) क्लोरिनीकरण प्रक्रिया के दौरान हैलोजन युक्त यौगिक बनाते हैं। कुछ स्कंदक सहायकों में

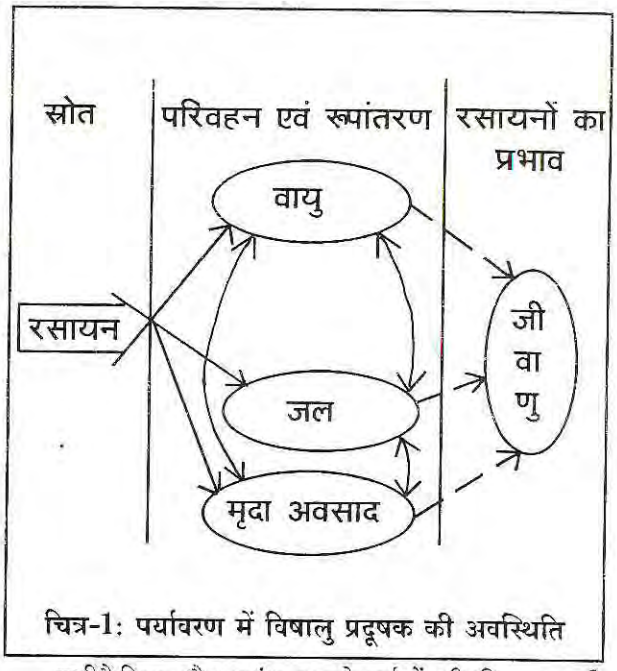

चित्र-1: पर्यावरण में विषालु प्रदूषक की अवस्थिति

एलीफैटिक और सगंध हाइड्रोकार्बनों की मिलावट भी होती है। ये भी पानी को दूषित करते हैं।

जल स्रोतों में पाये जाने वाले कुछ ऐसे भी कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो पारंपरिक जल उपचार प्रक्रिया के दौरान निकल नहीं पाते। प्राय: पानी में इन पदार्थों का होना औद्योगिक बहि:स्राव की वजह से होता है। कारखानों एवं कृषि अपशिष्टों से होने वाले कार्बनिक प्रदूषण की माप मोटे तौर पर रासायनिक ऑक्सीजन अपेक्षा (COD), जैवरासायनिक ऑक्सीजन अपेक्षा (BOD), कुल जैविक (कार्बनिक) कार्बन (TOC) परीक्षणों से होती है। किंतु इन परीक्षणों का उन स्थितियों में कोई उपयोग नहीं होता जहां यह जानना आवश्यकता होता है कि विशेष प्रदूषक क्या हैं ? जल में विशेष प्रदूषकों की जानकारी द्वारा हमें निम्न लक्षणों के कारणों का पता लगता है :-

1. पानी के स्वाद व गंध का कारण,
2. सतही एवं दूषित जल में विषैले पदार्थ की मात्रा,
3. कार्बनिक पदार्थ का स्रोत विशेष व उसकी अपघटन क्रिया का पता लगाना,
4. मछलियों की असमय मृत्यु का कारण,
5. किसी भी तकनीकी सुविधा का मूल्यांकन,

6. दीर्घ काल तक रहने वाले विषैले पदार्थों की वन्य जीवों के ऊतकों में एकत्रित मात्रा का अनुमान,
7. जल व बहिःस्राव में विषैले कार्बनिक पदार्थों के मानकों का निर्धारण ।

जैविक (कार्बनिक) पदार्थों का वर्गीकरण :

पेय जल में विभिन्न कार्बनिक प्रदूषकों की जानकारी कार्बनिक रसायनों के भिन्न-भिन्न कार्यकारी समूहों (Functional Groups) के होने से प्रमाणित होती है । इन सभी कार्बनिक पदार्थों का वर्गीकरण मुख्यतः कार्बनिक प्रदूषकों से हासिल हुई जानकारी के आधार पर किया गया है (तालिका-1) । इन सभी कार्बनिक पदार्थों की पहचान पी. पी. बी. व पी. पी. टी. की परास में करने की आवश्यकता रहती है । साधारण माप (Non Specific Measurement) जैसे कि कुल जैविक कार्बन और कुल कार्बनिक हेलाइड जैसे परीक्षण प्रायः कार्बन विशेष को नहीं दर्शाते । पर ऐसे साधारण विश्लेषण किसी भी जल उपचार संयंत्र में अभिक्रिया नियंत्रण की क्षमता दर्शाने में सहायक होते हैं ।

तालिका - 1 : कार्बनिक पदार्थों का वर्गीकरण

निम्न एवं उच्च अणुभार वाले हैलोजनयुक्त एलिफेटिक्स
निम्न एवं उच्च अणुभार वाले एरोमेटिक्स
निम्न एवं उच्च अणुभार वाले हेलोजनयुक्त एरोमेटिक्स
निम्न अणुभार वाले हेलोईथर्स
ऐल्कोहल, कीटोन, ईस्टरस
फिनॉल्स
थ्रेलेटस
पीड़कनाशी
शाकनाशी
नाइट्रोजन युक्त एरोमेटिक्स
नाइट्रोसोएमिन्स पॉलीक्लोरीनेटेड बाईफिनायल्स

स्वास्थ्य से संबंधित पदार्थों की कसौटी :

पेयजल में हजारों की संख्या में कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थों का पता लगाया गया है । स्वास्थ्य की दृष्टि से इन पदार्थों की निरापद मात्रा निर्धारित करने के लिए तीन बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है : (1) रसायनों की उतनी मात्रा का अनुमान जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, (2) जल में पायी जाने वाली मात्रा का अनुमान, तथा (3) जल में इन पदार्थों के पाये जाने की आवृत्ति क्या है ?

इनमें से कुछ रसायन बहुत अधिक हानिकारक होते हैं । जल में ऐसे कार्बनिक पदार्थों की रोकथाम करना बहुत आवश्यक है । कुछ विषैले पदार्थ जल शुद्धिकरण की प्रक्रिया के समय अथवा कुछ भवन निर्माण में प्रयुक्त सामग्री द्वारा जल में प्रवेश करते हैं । जल में ऐसे पदार्थों की रोकथाम के लिए विशेष विनिर्देशन दिये गये हैं । **उदाहरणतः** 1) जल उपचार के लिए पॉलिइलोक्ट्रोलाइट का स्कंदन के लिए उपयोग । पॉलीइलेक्ट्रोलाइट में एक निष्क्रिय मोनोमर अशुद्धि के रूप में मिला रहता है जो कि एक जहरीला पदार्थ है । 2) क्लोरीन में, जोकि जंतुनाशक की तरह जल शुद्धिकरण में उपयोग होती है, अधिकतर कार्बन ट्रेटाक्लोराइड की अशुद्धि का मिश्रण होता है । समय-समय पर कार्बनिक पदार्थों की गुणवत्ता जांच करते रहने से इन रसायनों के द्वारा होने वाले प्रदूषण से बचा जा सकता है । इसी प्रकार जलपूर्ति के लिए उपयोग में लाये जाने वाले प्लास्टिक पाइपों और पॉलिमराइज्ड कोटिंग की गुणवत्ता की जाँच के साथ-साथ यदि एक विशेष आचार संहिता अपनायी जाये तो इन रसायनों के कारण होने वाले प्रदूषण की रोकथाम में मदद मिलती है ।

पारंपरिक एवं विषैले प्रदूषक :

विषैले कार्बनिक पदार्थों में कुछ ऐसे विशेष पदार्थ होते हैं जो पारंपरिक जल प्रदूषकों से भिन्न हैं । अतः इन विषैले कार्बनिक पदार्थों से संबंधित समस्याओं की समालोचना के लिए आवश्यक है कि हम पारंपरिक एवं विषैले पदार्थों की भिन्नता को समझें । तालिका-2 में ऐसी कई विभिन्नताओं को दर्शाया गया है ।

साधारणतः एक से दो दर्जन प्रदूषक एवं जल गुणवत्ता संबंधी प्राचल पारंपरिक प्रदूषकों के वर्ग में आते हैं । जल पूर्ति व्यवस्था योजनाकारों का ध्यान पिछले कई सालों से जैव रासायनिक ऑक्सीजन अपेक्षा, पोषक तत्त्व आदि प्राचलों की ओर अधिक आकर्षित रहा है ।

तालिका - 2 : पारंपरिक एवं विषैले प्रदूषकों की विभिन्नताएं

पारंपरिक प्रदूषक	*विषैले प्रदूषक*
इस वर्ग में एक से दो दर्जन प्रदूषक पाये जाते हैं ।	इस वर्ग में हजारों प्रदूषक पाये जाते हैं जिनमें से अधिकतर मानव निर्मित होते हैं ।
अपना असर दिखाने के लिए पेय जल में इनकी बहुत बड़ी मात्रा का होना आवश्यक है (जैसे हजारों किलो प्रति दिन) ।	जल में अल्प मात्रा में पाये जाने से भी इनका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है (जैसे कुछ किलो प्रति दिन) ।
इनकी मात्रा पी. पी. एम. (मिग्रा./ली. में दर्शायी जाती है ।	इनकी मात्रा पी. पी. बी. (माग्रा./ली.) अथवा इससे भी छोटे पैमाने में दर्शायी जाती है ।
प्रायः जल में घुलनशील होने के कारण यह स्थानातंरित होते रहते हैं ।	प्रायः अघुलनशील व जल स्रोत की तली में तलछट में जमा रहते हैं ।
जल में इनकी उपस्थिति प्रायः बहते जल के दौरान अथवा उससे कम काल तक होती है ।	जल स्रोत की तली में तलछट में यह वर्षों तक रह सकते हैं ।
ये प्रदूषक सूक्ष्मजीवों द्वारा अधिकतर ऐसे पदार्थों में रूपांतरित हो जाते हैं जो हानिकारक नहीं होते ।	सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन संभव नहीं होता । अधिकतर विषैले रसायनों में रुपांतरित हो जाते हैं बाकी जल जीवों के शरीर में जमा हो जाते हैं ।

इन अल्प संख्यक पारंपरिक प्रदूषकों की तुलना में विषैले प्रदूषकों की संख्या कहीं अधिक है और मानव निर्मित कई नये रसायन इस संख्या में दिनोदिन वृद्धि करते जा रहे हैं । इन रसायनों में से कोई भी पर्यावरण में प्रवेश कर उसे दूषित कर सकता है । यद्यपि पारंपरिक प्रदूषकों की संख्या कम है किंतु कई स्रोतों से बहिःस्राव के कारण जल में इनका स्तर कहीं अधिक होता है । इन पारंपरिक प्रदूषकों को आत्मसात करने की जल स्रोतों की क्षमता अधिक होने के कारण इनका दुष्परिणाम अधिक नहीं होता । इसकी तुलना में बहुत कम मात्रा में, विषैले कार्बनिक पदार्थों के जल में स्रावित होने पर भी, कहीं अधिक दुष्परिणाम होता है । जहां पारंपरिक प्रदूषक को साधारणतः पी. पी. एम. (मिग्रा/ली.) के रूप में व्यक्त किया जाता है वहीं विषैले पदार्थों की मात्रा कम होने के कारण उन्हें पी. पी. बी. (माइक्रोग्रा./ली.) अथवा इससे कहीं छोटे पैमाने नैनोग्रा./ली. में प्रस्तुत किया जाता है । विषैले पदार्थों की कम मात्रा से पर्यावरण पर होने वाले गंभीर परिणाम के फलस्वरूप इनकी अत्यल्प मात्राओं का पेयजल में होना भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता ।

अनेक पारंपरिक प्रदूषक पानी में घुलित अवस्था में स्थानांतरित होते रहते हैं । दूसरे अन्य विषैले रसायन जल में निलंबित पदार्थ के रूप में तलछट द्वारा अवशोषित अवस्था में पाये जाते हैं । ये प्रदूषक कई सालों तक पानी में एक स्थान पर भी जमा रह सकते हैं । अतः किसी विषैले पदार्थ के पानी में छोड़ने के पश्चात उसके दुष्परिणाम कितने सालों के बाद दृष्टिगोचर होंगे यह उस पदार्थ के गुणों पर निर्भर करता है ।

पेय जल के मानक निर्धारण का आधार :

पेय जल के मानक निर्धारित करने का प्रमुख उद्देश्य जल की गुणवत्ता बनाये रखना है ताकि ऐसे जल को रोजमर्रा की जिंदगी में बिना किसी हानि के उपयोग में लाया जा सके । ये मानक निम्नलिखित बातों पर आधारित होते हैं :-

1. पदार्थों की मात्रा और उनकी पारस्परिक प्रतिक्रिया संबंधों को परिभाषित करने का वैज्ञानिक आधार ।
2. जल में साधारणतः पाये जाने वाले पदार्थों की आवृत्ति एवं उनके स्तर संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण ।
3. पेय जल में पाये जाने वाले पदार्थों की मात्रा कम करने अथवा निकालने की तकनीकों का उपयोग ।

पेय जल में पाये जाने वाले विभिन्न रसायनों की विषालुता संबंधी आंकड़ों की समीक्षा निम्नलिखित आधार पर की गयी है :-

1. इन विषैले पदार्थों के निरापद स्तर निर्धारित करना ।
2. निर्धारित मानकों के चयन के औचित्य का संक्षिप्त विवरण ।
3. मानक निर्धारित करने लिए उपयोग में लायी गयी स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के लिए अलग प्रलेख उपलब्ध करना ।

4. इन विषैले रसायनों के प्रत्येक वर्ग के लिए मानकों के अनुप्रयोग संबंधी जानकारी उपलब्ध करना ।

स्वास्थ्य संबंधी खतरों का मूल्यांकन :

मार्गनिर्देश तैयार करने के लिए मनुष्यों तथा पशुओं पर रासायनिक पदार्थों की विषालुता संबंधी प्रयोग किये गये हैं । लेकिन इस प्रकार के प्रयोग अधिक नहीं हुए हैं । मानव स्वास्थ्य संबंधी मार्गनिर्देश तैयार करने के लिए सुनियोजित अध्ययनों में रासायनिक पदार्थों की मात्रा तथा इनकी प्रतिक्रिया के पारस्परिक संबंध से संबंधित आंकड़े महत्वपूर्ण होते हैं । विशेषज्ञों के निर्णय के अनुसार उपलब्ध सूचना से सर्वाधिक उपयुक्त अध्ययन का चयन किया गया है ।

मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कार्बनिक प्रदूषक :

मनुष्य के स्वास्थ्य पर पेय जल की गुणवत्ता का अनेक तरह से असर हो सकता है । अत: स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से रासायनिक कार्बनिक पदार्थों के प्रदूषण का अनुमान लगाना अत्यावश्यक होता है किंतु किसी स्थान पर किस प्रकार के कार्बनिक पदार्थों के कारण प्रदूषण है एवं उससे कौन सी बीमारियां फैल सकती हैं, यह उस क्षेत्र में स्थित कारखानों, जलवायु, जल उपचार विधि व अन्य बहुत सी बातों पर निर्भर करता है ।

विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा किये गये पेय जल पूर्ति संबंधी अध्ययनों से कार्बनिक पदार्थों के प्रदूषण का पता चलता है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 1996 एवं संयुक्त राज्य पर्यावरण संरक्षण ऐजेंसी, 1985) । निम्नलिखित पदार्थ प्रमुख प्रदूषक समझे जाते हैं :

क्लोरीनयुक्त एल्केन्स :

डाईक्लोरोइथेन, ट्राईक्लोरोइथेन, कार्बनटेट्राक्लोराइड आदि क्लोरीनयुक्त रसायनों का उपयोग कई क्लोरोकार्बनिक पदार्थों के उत्पादन में किया जाता है । उपचारित एवं अनुपचारित जल में ये पदार्थ पाये जाते हैं । उपलब्ध जानकारी के अनुसार 1,1 डाईक्लोरोइथेन व 1,1,1 ट्राईक्लोरोइथेन मनुष्य के शरीर में कर्क रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं । इनमें से कई पदार्थों के शरीर में प्रवेश करने से यकृत, गुर्दे एवं हृदय पर दुष्परिणाम होने की संभावना होती है । इन पदार्थों के बारे में संपूर्ण जानकारी न होने के कारण सिर्फ नियमित क्लोरीनयुक्त एल्केन्स के लिए ही मार्गनिर्देश मान उपलब्ध है । 1,2 डाईक्लोरोइथेन, कार्बनटेट्राक्लोराइड, डाईक्लोरोमीथेन व 1,1,1, ट्राइक्लोरोइथेन के लिए मार्गनिर्देश तैयार किये गये हैं ।

1,2 डाईक्लोरोइथेन : यह पदार्थ पेयजल में अधिकांशत: पी. पी. बी. की मात्रा में पाया जाता है । अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यह नशीला होता है और यकृत, गुर्दे तथा हृदय तंत्र को हानि पहुंचाता है । इसका मार्गनिर्देशक मान 30 माग्रा./ली. है ।

कार्बन टेट्राक्लोराइड : अनुपचारित एवं उपचारित जल में कार्बनटेट्राक्लोराइड का अनुमानित स्तर पी. पी. बी. की मात्रा में पाया जाता है । यह यकृत एवं गुर्दे को हानि पहुंचाता है तथा कर्क रोग पैदा करता है । कार्बनटेट्राक्लोराइड के पेयजल में पाये जाने के कारण मार्गनिर्देशक मान 2 माग्रा./ली. है ।

डाईक्लोरोमीथेन : कॉफी डीकैफीनेशन व पेंट साफ करने के लिए इसके घोल का उपयोग किया जाता है । इसकी विषालुता बहुत अधिक नहीं होती है । चूहों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर पेय जल में इसका मार्गनिर्देशक मान 20 माग्रा./ली. है ।

1,1,1 ट्राईक्लोरोइथेन : यह प्राय: सतही और भूजल में 2000 माग्रा./ली. का मात्रा से कम में मिलता है । इसकी विषालुता संबंधी पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण अंतरिम तौर पर इसका मार्गनिर्देशक मान 2000 माग्रा./ली. है ।

क्लोरीनयुक्त इथेन :

डाईक्लोरोइथेन, ट्राईक्लोरोइथेन, टेट्राक्लोरोइथेन, विनाइलक्लोराइड जैसे क्लोरीनयुक्त इथेन पदार्थ विलायक, पेंट, तनुकारक, ड्राईक्लीन आदि के उपयोग में लाये जाने वाले द्रव हैं । शुद्ध एवं दूषित जल में इनकी मात्रा 1 माग्रा./ली. तक रह सकती है । चूंकि यह वाष्पशील

पदार्थ हैं अतः जल की ऊपरी सतह पर इनका स्तर समय से साथ कम तो होता जाता है।

विनाइल क्लोराइड, कर्क रोग उत्पन्न करने वाला जाना माना कार्बनिक पदार्थ भी इसी वर्ग का है। पाइपों में प्रयुक्त पदार्थों में पॉलीविनाइल क्लोराइड एक प्रमुख रसायन है। अन्य क्लोरीनयुक्त इथेन की तुलना में 1,1 डाईक्लोरोइथेन के विषय में अपेक्षाकृत अधिक जानकारी उपलब्ध होने के कारण सिर्फ इसी रसायन के लिए मार्गनिर्देशक मान उपलब्ध हैं। यद्यपि 1,2 डाईक्लोरोइथेन टेट्राक्लोरोइथेन के विषय में पर्याप्त जानकारी न होते हुए भी दूषित भूजल में पाये जाने के कारण उनके लिए भी मार्गनिर्देशक मान तैयार किये गये हैं।

1,1डाइक्लोरोइथेन व 1, 2 डाईक्लोरोइथेन :

1,1 डाईक्लोरोइथेन एक ऐसा मोनोमर है जिसके प्रति पर्यावरण वैज्ञानिक काफी सजग हैं क्योंकि यह जानवरों में कर्क रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। यह रसायन कई प्रकार के बहुलक बनाने में उपयोग में लाया जाता है, जैसे खाद्य पदार्थों की पैकिंग सामग्री और थैलियां आदि। जानवरों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर इस कार्बनिक पदार्थ का मार्गनिर्देशक मान 30 माग्रा./ली. है।

1,2 डाईक्लोरोइथेन प्रायः सिस व ट्रॉस अवस्थाओं में पानी में पाया जाता है। इन दोनों ही आइसोमरों द्वारा कर्क रोग उत्पन्न करने की जानकारी नहीं है। सिस आइसोमर की चयापचय दर ट्रॉस से ज्यादा होने के कारण ट्रॉस की ही विषालुता संबंधी परीक्षण चूहों पर किये गये हैं। इन परीक्षणों के आधार पर 1,2 डाईक्लोरोइथेन के लिए मार्गनिर्देशक मान 50 माग्रा./ली. है।

ट्राईक्लोरोइथेन :

ट्राईक्लोराइथेन के कारण चूहों के फेफड़ों और यकृत में रसौली (ट्यूमर) हो जाती है। बहुधा यह जल में पाये जाने के कारण अनंतिम रूप से इसका मार्गनिर्देशक मान 70 माग्रा./ली. है।

विनाइल क्लोराइड :

यह मुख्यतः पॉलीविनाइल क्लोराइड के उत्पादन में प्रयोग होता है। जल में यह अधिकांशतः ट्राइक्लोरोइथेन व टेट्राक्लोरोइथेन के संगत में पाया जाता है। मानव शरीर में कर्क रोग उत्पन्न करने की इसकी क्षमता के कई प्रमाण उपलब्ध हैं। एक व्यक्ति द्वारा एक दिन में 20 माग्रा./ली. विनाइल क्लोराइड के ग्रहण करने पर व यदि इससे होने वाली जोखिम का कारक 10^{-5} मान लिया जाय तो इस आधार पर पेय जल में इसका मार्गनिर्देशक मान 5 माग्रा./ली. है।

टेट्राक्लोरोइथेन :

टेट्राक्लोरोइथेन ड्राईक्लीन उद्योग में विलायक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसकी ज्यादा मात्रा केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करती है। पेय जल में इसका मार्गनिर्देशक मान 40 माग्रा./ली. है।

सगंध हाइड्रोकार्बन :

बेंजीन, इथाइलबेंजीन जैसे सगंध हाइड्रोकार्बनों का प्रमुख स्रोत पेट्रोलियम उद्योग एवं उसमें बनने वाले कई पदार्थ हैं। टॉल्वीन, जाईलिन व स्टाइरिन कुछ अन्य सगंध हाइड्रोकार्बन हैं जिनके लिए मार्गनिर्देशक मान उपलब्ध हैं।

टॉल्वीन, जाईलिन व स्टाइरिन :

टॉल्वीन व जाईलिन दोनों ही का विलायक के रूप में प्रयोग किया जाता है। दोनों ही यौगिक सतही, भूजल और पेय जल में बहुत ही कम मात्रा पी. पी. बी. में पाये जाते हैं। इन दोनों पदार्थों की विषालुता बहुत कम है। इसकी विषालुता संबंधी आकड़ों के आधार पर टॉल्वीन और जाईलिन का मार्गनिर्देश मान 700 माग्रा./ली. और 500 माग्रा./ली. हैं। स्टाइरिन का उपयोग प्रायः प्लास्टिक व रेजिन बनाने के लिए होता है व यह सतही पानी में पाया जाता है। इसकी विषालुता बहुत अधिक नहीं है। चूहों पर किये गये परीक्षणों के आधार पर स्टाइरिन का पेय जल में मार्गनिर्देशक मान 20 माग्रा./ली. है।

बेंजीन :

विभिन्न कार्बनिक पदार्थों के उत्पादन में बेंजीन का प्रयोग किया जाता है । पेय जल में इसकी मात्रा अक्सर ही 5 माग्रा./ली. से कम पायी जाती है । बेंजीन की अधिक मात्रा से मनुष्य के केंद्रीय तांत्रिका तंत्र पर प्रभाव पड़ता है । कम मात्रा (पी. पी. टी.) में होने से बेंजीन रक्त में हेमेटोलॉजिकल परिवर्तन करती है जो आगे चल कर रक्ताल्पता में बदल सकता है । पेय जल में बेंजीन मार्गनिर्देशक मान 10 माग्रा./ली. है ।

इथाइलबेंजीन :

पर्यावरण में इथाइलबेंजीन का प्रमुख स्रोत पेट्रोलियम उद्योग एवं उससे निकलने वाले कई पदार्थ हैं । इसके भौतिक एवं रासायनिक गुणों के कारण प्रायः वायु में इथाइलबेंजीन पायी जाती है । पेय जल में इसकी बहुत कम मात्रा पायी जाती है । अन्य कार्बनिक पदार्थों की तरह यह कर्क रोग उत्पन्न करने में सहायक नहीं होती । जानवरों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर यदि हम पेय जल द्वारा 10% दैनिक स्वीकार्य मात्रा लें तो पेय जल में इसका मार्गनिर्देशक मान 300 माग्रा./ली. है ।

बहुनाभिकीय सगंध हाइड्रोकार्बन (PAH) :

पर्यावरण में पाये जाने वाले विभिन्न बहुनाभिकीय सगंध हाइड्रोकार्हन (ब. स. हा.) के प्रमुख स्रोत दहन एवं ताप अपघटन (Pyrolysis) प्रक्रियाएं हैं । मुख्यतः छः ब. स. हा. पर ही अधिक शोध किया गया है जिनमें बेंजो (ए) -पाइरिन प्रमुख है एवं अन्य ब. स. हा. के होने का प्रमाण मिलता है । जल वितरण के लिए तैयार किये गये कोल तार के पाइप उपयोग में लाने से जल में ब. स. हा. के स्तर में वृद्धि होने के प्रमाण उपलब्ध हैं । ये छः ब. स. हा. इस प्रकार हैं :- फ्लोरेथिन, बेंजो-(बी) और (K) फ्लोरेथिन, बेंजो-(ए)-पाइरिन, बेंजो-(phi)- पेरीलीन और इडेनो-(1,2,3,-सीडी)-पाइरिन । इनमें से सिर्फ बेंजो-(ए)-पाइरिन की विषालुता संबंधी ही जानकारी उपलब्ध है । कई ब. स. हा. मिश्रण कर्क रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं किंतु किसी एक ब. स. हा. का इस रोग को उत्पन्न करने की क्षमता परखना अधिक कठिन है ।

मनुष्य के स्वास्थ्य पर होने वाले ब. स. हा. के प्रभाव के लिए भी कई प्रयोग किये गये हैं । बेंजो-ए-पाइरिन के त्वचा के संपर्क में आने से त्वचा (लीजन्स) उत्पन्न होते हैं । नैप्थलीन जैसे विषैले ब. स. हा. से मनुष्य की मृत्यु तक संभव है । इन सब परिणामों के आधार पर बेंजो-ए-पाइरिन के लिए जल में मार्गनिर्देशक मान 0.7 माग्रा./ली. है ।

क्लोरीनयुक्त बेंजीन :

कई रासायनिक कारखानों में क्लोरोबेंजीन मध्यवर्ती पदार्थों के रूप में रंग (डाई), कीटनाशी आदि के उत्पादन के लिए उपयोग में लायी जाती है । अन्य रासायनिक प्रक्रियाओं में यह विलायक के तौर पर इस्तेमाल की जाती है । इस वर्ग के विभिन्न रसायनों में मोनोक्लोरोबेंजीन, 1,2 और 1,4 डाईक्लोरोबेंजीन एवं 1,2,4 ट्राईक्लोरोबेंजीन पेय जल में पी. पी. बी. स्तर पर पायी जाती हैं । उपलब्ध जानकारी के अनुसार जल में पाये जाने वाले मोनो-क्लोरोबेंजीन, 1,2 एवं 1,4 डाईक्लोरो-बेंजीन के विषैलेपन का स्तर एवं गंध की सांद्रता का स्तर समान नहीं है । इन पदार्थों का प्रमुख प्रभाव यकृत पर दृष्टिगोचर होता है । जानकारी के अभाव के कारण 1,2,4-ट्राईक्लोरोबेंजीन के लिए कोई सीमा निधारित नहीं की गयी है ।

मोनोक्लोरो बेंजीन :

मोनोक्लोरो बेंजीन (MCB) के कर्क रोग जनन क्षमता संबंधी आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं । चूहों एवं कुत्तों पर किये गये अल्पकालीन अध्ययनों के आधार पर इनके प्रतिकूल प्रभावों का स्तर वजन के अनुसार क्रमशः 15 और 27 माग्रा./किग्रा. निर्धारित किया गया है । मोनोक्लोरो बेंजीन की विषालुता का असर मुख्यतः केंद्रीय तांत्रिका तंत्र पर होता है जिसके परिणास्वरूप सरदर्द, चक्कर एवं निद्रा जैसे आसार नजर आते हैं । यदि हमारे शरीर में जाने वाली मोनोक्लोरो बेंजीन की 10% मात्रा पेय जल द्वारा प्रवेश करती है तो उस आधार पर पेय जल में इसके विषैलेपन का मार्गनिर्देशक मान 300 माग्रा./ली. है ।

1,2-डाईक्लोरोबेंजीन व 1,4-डाईक्लोरोबेंजीन:

डाईक्लोरोबेंजीन मुख्यतः कारखानों में रोजमर्रा के उपयोग की वस्तुएं जैसे रंजक, गंध निवारक एवं कीटनाशियों

के उत्पादन में उपयोग में लाया जाता है । चयापचयी प्रक्रियां के द्वारा डाईक्लोरोबेंजीन मुख्यतः ऊतकों की वसा में जमा होता है। प्रायागिक पशुओं पर डाईक्लोरोबेंजीन के प्रभाव को जानने के लिए कई अल्पकालीन अध्ययनों के आधार पर पानी में 1,2-डाईक्लोरोबेंजीन एवं 1,4-डाईक्लोरोबेंजीन की दैनिक स्वीकार्य मात्रा क्रमशः 429 माग्रा./किग्रा. एवं 107 माग्रा./किग्रा. निर्धारित की गयी है। इसमें से 10% डाईक्लोरोबेंजीन यदि पेय जल द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश करता है तो इस आधार पर पेय जल में इसकी विषालुता के लिए मार्गनिर्देशक मान क्रमशः 1000 एवं 300 माग्रा./ली. है । पेय जल में दुर्गंधी 1,2 आइसोमर के लिए 1-10 माग्रा./ली. एवं 1,4 आइसोमर के लिए 0.3-30 माग्रा./ली. मार्गनिर्देशक मान निश्चित किया गया है । विश्व स्वास्थ्य संगठन की 1984, 1991 की रिपोर्टों के अनुसार यदि अल्पावधि के लिए डाईक्लोरोबेंजीन के प्रभाव में आदमी रहे तो अत्यधिक रक्ताल्पता, श्वास रोग तथा त्वचा की एलर्जी हो जाती है। 1,4-डाईक्लोरोबेंजीन के दीर्घकालीन प्रभाव के कारण रक्ताल्पता, यकृत में विकृति तथा केंद्रीय तांत्रिका तंत्र को हानि होती है ।

ट्राईक्लोरोबेंजीन :

ट्राईक्लोरोबेंजीन (TCB) यदि सांस द्वारा अथवा अन्य कारणों से शरीर में प्रवेश करती है तो यह मामूली विषैली सिद्ध होती है । ट्राईक्लोरोबेंजीन के शरीर पर अल्पकालीन प्रभाव तीनों आइसोमरों के लिए एक समान होते हैं । इसके विषैलेपन का प्रमुख प्रभाव यकृत पर दिखायी देता है । जानवरों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर प्रति किलो शारीरिक भार के लिए ट्राई-क्लोरोबेंजीन की दैनिक स्वीकार्य मात्रा 7.7 माग्रा./ली. निर्धारित की गयी है ।

शरीर में प्रवेश करने वाली 10% ट्राईक्लोरोबेंजीन हम पेय जल द्वारा लेते हैं तो इस आधार पर इसके प्रत्येक आइसोमर का पेय जल में मार्गनिर्देशक मान 20 माग्रा./ली. है । चूंकि ट्राईक्लोरोबेंजीन के सभी आइसोमर्स की विषालुता का प्रभाव समान है अतः कुल ट्राईक्लोरोबेंजीन का मार्गनिर्देशक मान 20 माग्रा./ली. है । कुल ट्राईक्लोरोबेंजीन की दुर्गंध के लिए निर्धारित मार्गनिर्देशक मान 5-50 माग्रा./ली. है ।

पीड़कनाशी :

भारत में पीड़कनाशियों का उत्पादन चार दशकों से होता आ रहा है । दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए पीड़कनाशियों के उपयोग को महत्व दिया गया । इस दौरान डी. डी. टी., बी. एच. सी. आदि क्लोरीनयुक्त कार्बनिक पीड़कनाशियों का प्रयोग बड़ी मात्रा में किया जाने लगा । पीड़कनाशियों के बढ़ते उपयोग के साथ पर्यावरण में इनके हानिकारक परिणाम भी दृष्टिगोचर हुए । क्लोरीनयुक्त कार्बनिक पीड़कनाशियों के मृदा में काफी समय तक बने रहने के कारण सूक्ष्मजीवों में इनके जमा होने की संभावना बढ़ती गयी एवं धीरे-धीरे इनमें इस रसायन के लिए प्रतिरोधिता पैदा हो गयी जिसके परिणामस्वरूप फॉस्फोरस युक्त कार्बनिक पीड़क-नाशियों का जन्म हुआ । 1977 के बाद भारतीय पीड़कनाशी उद्योग दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने लगा । बी. एच. सी., डी. डी. टी. एवं शेष क्लोरीनयुक्त कार्बनिक पीड़कनाशियों के साथ-साथ फॉस्फोरसयुक्त कार्बनिक वर्ग में डाईमेथोएट, पैराथियॉन (मिथाइल एवं इथाइल) मेलाथियॉन, फॉस्फोमिडॉन, डी. डी. वी. पी. आदि का एवं कार्बोनेट वर्ग में कार्बारिल का उत्पादन शुरू हुआ ।

इन पीड़कनाशियों के अपघटन द्वारा प्राप्त उत्पाद. पेय जल में हानिकारक सिद्ध होते हैं। अधिकतर पीड़कनाशी रसौली पैदा करने वाले सिद्ध हुए हैं। इनका हानिकारक प्रभाव मुख्यतः परिधीय एवं केंद्रीय तांत्रिका तंत्र पर होता है व यकृत पर भी इसका काफी असर दिखता है। कुछ पीड़कनाशी जैसे (एच. सी. बी.) के त्वचा के संपर्क में आने से चेहरे और हाथ पर चकत्ते पड़ने एवं त्वचा रोग (Epidermolysis) होने की संभावना रहती है। लिंडेन (Lindane - BHC) जैसे पीड़कनाशी के संपर्क में आने से जी मिचलाना, उल्टी, स्पाज़्, एक्वानोसिस के साथ धीमी श्वास गति जैसी शिकायत होती है। 2,4-D

जैसे पीड़कनाशी से सरदर्द, यकृत में दर्द, भूख न लगना थकावट आदि तकलीफें होती हैं।

जंतुनाशक उपजात :

पेय जल शुद्धिकरण प्रक्रिया में जंतुनाशक (Disinfectant) महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सूक्ष्म रोगाणुओं के नाश के लिए कुछ तेज रसायन उपयोग में लाये जाते है जैसे क्लोरीन। किंतु यह जल के अन्य घटकों के साथ मिलकर अन्य नये हानिकारक रसायन तैयार करता है। उदाहरणार्थ हायपोक्लोराइट के फिनोलिक अम्ल (जंतुनाशी) के साथ अनुक्रिया से बनने वाले क्लोरोफिनॉल, औद्योगिक बहिःस्रावों में उपस्थित नैसर्गिक कार्बनिक पदार्थों के ओजोनीकरण एवं क्लोरीनीकरण के दौरान बनने वाला फॉर्मलडिहाइड।

क्लोरोफिनॉल, फॉर्मलडिहाइड, ट्राईहलोमीथेन, क्लोरीनयुक्त एसिटिक अम्ल, क्लोरलहाइड्रेट, एसीटोन, हेलोजनटेड एसीटोनाइट्राइल आदि जल की जंतुनाशक प्रक्रिया के उपजात हैं।

ट्राईहेलोमीथेन :

ट्राईहेलोमीथेन एकल कार्बन वाले यौगिक हैं जिनका सामान्य सूत्र CHX_3 है। जहां, X क्लोरीन, फ्लोरीन, ब्रोमीन या आयोडीन या इनका संयुक्त रूप हो सकता है। पेय जल में पाये जाने वाले मुख्य ट्राईहेलोमीथेन, ब्रोमोफॉर्म, डाइब्रोमोक्लोरोमीथेन (DBCM), ब्रोमोडाई-क्लोरोमीथेन (BDCM) एवं क्लोरोफॉर्म हैं। इनमें भी क्लोरोफॉर्म प्रमुख है जो पानी में अधिकतर पाया जाता है। जल में क्लोरीन के कार्बनिक पदार्थ के साथ प्रक्रिया से ट्राईहेलोमीथेन बनती है। इनका मुख्य प्रभाव यकृत एवं गुर्दों, पर दृष्टिगोचर होता है। क्लोरोफॉर्म यकृत एवं गुर्दो के अलावा थाइरायड को भी नुकसान पहुंचाता है एवं मनुष्य में कर्क रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। उपरोक्त चारों ट्राई हेलोमीथेन एक साथ पाये जाने के कारण उन्हें एक ही वर्ग में रखा गया है। चूंकि चारों ट्राईहेलोमीथेनों का विषैला प्रभाव एक जैसा है अतः कुल ट्राईहेलोमीथेनों का मार्गनिर्देशक मान निर्धारित करने के लिए चारों का अनुपात एक साथ नहीं दर्शाते। चारों ट्राईहेलोमीथेनों का अलग-अलग मार्ग निर्देशक मान 60-200 माग्रा./ली. है।

क्लोरोफिनॉल :

यह फिनॉल के क्लोरीनीकरण के कारण या हाइपोक्लोराइड के फिनॉलिक अम्ल के साथ होने वाली अनुक्रिया के उपजात के रूप में अथवा फिनॉक्सी शाकनाशी (Herbicide) के अपघटन के कारण उत्पाद के रूप में उत्पन्न होते हैं। 2-क्लोरोफिनॉल, 2,4-डाई-क्लोरोफिनॉल एवं 2,4,6-ट्राईक्लोरोफिनॉल पेयजल में पाये जाने वाले क्लोरीनीकरण के प्रमुख उपजात हैं। पेय जल में इन सभी क्लोरोफिनॉलों का स्तर अधिकतर 1 माग्रा./ली. से कम होता है।

फॉर्मलडिहाइड :

प्रायः औद्योगिक बहिःस्रावों में फॉर्मलडिहाइड पाया जाता है। पेय जल में इसका प्रवेश पॉलिएसिटस प्लास्टिक फिटिंग के कारण होता है। ओजोनीकृत पेय जल में इसका स्तर 30 माग्रा./ली. है। फॉर्मलडिहाइड की 20% दैनिक स्वीकार्य मात्रा के पेय जल द्वारा ग्रहण करने के आधार पर इसका मार्गनिर्देशक मान 900 माग्रा./ली. है।

कुछ अन्य कार्बनिक प्रदूषक :

कुछ ऐसे प्राथमिकता वाले कार्बनिक प्रदूषक है जो किसी भी वर्ग विशेष में नहीं आते हैं। पर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा उनके लिए मार्गनिर्देशक मान तैयार किये गये हैं। डाई (2-इथाईलहेगसाइल) एडिपेट, डाई (2-इथाईलहेगसाइल) थ्येलेट, एक्राइलएमाइड, एपिक्लोरो-हाईड्रिन, हेक्साक्लोरोब्युटाडाइन, एडिटिक एसिड, नाइट्रीलोट्राईएसिटिक एसिड एवं ट्राईब्युटाईलटिन ऑक्साइड कुछ ऐसे ही प्रदूषक हैं। डाई (2-इथाईलहेगसाइल) एडिपेट व डाई (2-इथाईलहेगसाइल) थ्येलेट का प्रयोग प्लास्टाईजर की तरह कृत्रिम रेजिन बनाने के लिए होता है। इनकी मात्रा पी. पी. बी. के अनुपात में पेय जल में पायी गयी है। इन दोनों कार्बनिकों की विषालुता अति अल्पकालीन होती है। पेय जल में डाई

(2-इथाईलहेगसाइल) एडिपेड व डाई (2-इथाईलहेगसाइल) थ्येलेट का मार्ग निर्देशक मान क्रमशः 80 माग्रा./ली. व 8 माग्रा./ली. प्रस्तावित है।

एक्राइलएमाइड मोनोमर साधारणतः पॉली-एक्रिलामाइड के रूप में पाया जाता है जो कि पेय जल के शुद्धिकरण के समय स्कंदक के रूप में, भवन निर्माण व खाद्य प्रसंसाधान उद्योग में उपयोग में लाया जाता है। एक्राइलएमाइड एक (जेनोटॉक्सिक) कैंसरजनक प्रदूषक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा इसके लिए मार्ग निर्देशक मान 0.5 माग्रा./ली. है।

एपिक्लोरोहाईड्रिन उपयोग ग्लिसरॉलइपॉक्सी रेजिन के बनाने के लिए एवं जल शुद्धिकरण में उपयोग में आने वाली रेजिन के लिए होता है। यह एक जेनोटॉक्सिक कैंसरजनक के रूप में माना जाता है। एपिक्लोरोहाईड्रिन के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा मार्गनिर्देशक मान 0.4 माग्रा./ली. प्रस्तावित है।

हेक्साक्लोरोब्यूडाईन का प्रयोग रासायनिक घोल की तरह क्लोरीन के उत्पादन के लिए पीड़कनाशी की तरह, रबर के पदार्थ बनाने वाले कारखानों में व स्नेहकों के लिए होता है। यह अधिकांशतः विनिर्माण संयंत्रों के बहिःस्राव में मिलता है। इसके अंश वायु व खाद्य पदार्थों में भी मिलते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पेय जल में इसका मार्ग निर्देशक मान 0.6 माग्रा./ली. प्रस्तावित किया है।

एडिटिक एसिड के लवणों का उपयोग अधिकांशतः रासायनिक प्रक्रियाओं, घरेलू वस्तुओं व खाद्य पदार्थों में योजकों की तरह होता है। इसकी अपघटन दर बहुत ही कम है इसलिए जल में इसकी मात्रा मिलने की बहुत अधिक संभावना रहती है। जल में इसकी मात्रा करीब 0.9 माग्रा./ली. तक पायी गयी है। यह उन पदार्थों में शामिल किया जाता है जिनकी विषालुता कम होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसका मार्गनिर्देशक मान 200 माग्रा./ली. प्रस्तावित किया है।

नाईट्रीलोट्राईएसिटिक एसिड का उपयोग अधिकांशतः अपमार्जक (Detergents) की तरह होता है। इसकी मात्रा पेय जल में निम्न पी. पी. बी. स्तर तक पायी गयी है। परीक्षणों के आधार पर इसका मार्गनिर्देशक मान 200 माग्रा./ली. प्रस्तावित किया है।

ट्राईब्युटाईलटिन ऑक्साइड का प्रयोग अधिकांशतः जंतुनाशी, पेंट की गंध निवारक एजेन्ट की तरह व लकड़ी के संरक्षण के लिए होता है। यह जल में पाये जाने वाले जंतुओं के लिए एक बहुत ही तेज प्रदूषक सिद्ध हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने ट्राईब्युटाईलटिन ऑक्साइड का मार्गनिर्देशक मान 2 माग्रा./ली. प्रस्तावित किया है।

इस तकनीकी युग में रसायनों के बढ़ते उपयोग ने पर्यावरण के विभिन्न घटकों को प्रदूषित किया है। पेय जल स्रोतों में इन रसायनों का बहिःस्राव होने से या प्राकृतिक रूप में विद्यमान होने से जल, जीवों, पौधों एवं साथ ही मनुष्य पर इनका हानिकारक प्रभाव होता है। शुद्धिकरण प्रक्रिया द्वारा भी जल में कार्बनिक पदार्थ प्रवेश करते हैं। कई कार्बनिक पदार्थ कर्क रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। अतः जल में पाये जाने वाले इन कार्बनिक पदार्थों का अनुमान लगाना स्वास्थ्य की दृष्टि में अत्यावश्यक है। जल में इनकी मात्रा बहुत कम होने से इनका सीधा विश्लेषण संभव नहीं है। विभिन्न प्रयोगों द्वारा पहले इन्हें सांद्रित किया जाता है तदुपरांत गैस क्रोमेटोग्राफी, एवं गैस क्रोमेटोग्राफी-द्रव्यमान स्पेक्ट्रोमीटर व उच्च क्षमता द्रव क्रोमेटोग्राफी जैसी तकनीकों द्वारा इनका विश्लेषण किया जाता है। बहुत से राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने पेय जल में ऐसे प्रदूषकों की मात्रा निर्धारित करने के लिए कुछ मार्गनिर्देशक मान प्रस्तावित किये हैं। अंतर्ग्राही (Intake) जल में इनकी मात्रा का अनुमान होने से शुद्धिकरण में उपयोगी तकनीकी साधनों का मूल्यांकन करने में मदद मिलती है।

ऊपर दी गयी जानकारी से हम अनुमान लगा सकते हैं कि पेय जल में किस-किस प्रकार के कार्बनिक (जैविक) प्रदूषक हो सकते हैं एवं उनके उपस्थित होने पर उस जल की गुणवत्ता का मनुष्य के स्वास्थ्य पर किस प्रकार का प्रभाव हो सकता है। यह सभी जानकारी जल को शुद्ध करने के लिए उपयुक्त तकनीकों के विकास में सहायक होती है।

❐❐❐

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1997) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख (अहिंदी-भाषी)

कामिनी परमाणु भट्टी

डॉ. मधु सूदन वी. डिंगणकर
विकिरण सुरक्षा प्रणाली प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के अंतर्गत, समय-समय पर कई अनुसंधान एवं शक्ति रिएक्टरों के निर्माण एवं क्रियान्वयन होते रहे हैं। डॉ. होमी भाभा ने एक तीन सूत्री कार्यक्रम बनाया था जिसके तीसरे चरण में भारत में बहुल्यता में उपलब्ध थोरियम का उपयोग कर परणाणु बिजली घर बनाने की योजना रखी गयी थी। 'कामिनी' परमाणु रिएक्टर इसी श्रृंखला का एक अनुसंधान रिएक्टर है जो लगभग दो वर्ष पूर्व कार्यरत हुआ। यह रिएक्टर ईंधन परीक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्रस्तुत लेख में इस रिएक्टर की संरचना, ईंधन, उपयोगिता, ख़तरों इत्यादि पहलुओं पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

29 अक्तूबर 1996 को 30 किलो वाट-ऊष्मीय ऊर्जा वाली कामिनी परमाणु भट्टी को प्रचालित करके भारतीय परमाणु ऊर्जा विभाग ने एक महत्वपूर्ण कीर्तिमान स्थापित किया। यह अनुसंधान परमाणु रिएक्टर कल्पाक्कम स्थित 'इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केंद्र' में है और कई दृष्टियों में विशिष्टतापूर्ण है। इसमें प्रयुक्त ईंधन यूरेनियम-233 मानव निर्मित है। विश्व में कार्यरत परमाणु रिएक्टरों में यही एक मात्र ऐसा रिएक्टर है जिसमें U-233 का उपयोग किया गया है। थोरियम से U-233 बनाना, उसे विखंडन उत्पादों से अलग करके रिएक्टर में प्रयोग लायक बनाना सभी महत्वपूर्ण कार्य हैं। ये सभी प्रकियाएं भारत में ही विकसित की गयी हैं। हालांकि इस रिएक्टर की 30 किलो वाट ऊष्मीय क्षमता, बिजली तैयार करने की दृष्टि से कम है तथापि ईंधन परीक्षण एवं अनुसंधान के लिए पर्याप्त है।

ईंधन :

साधारणतः परमाणु भट्टी में प्लूटोनिम-239 या यूरेनियम-235 को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। प्राकृतिक रूप से प्राप्त यूरेनियम में U-235 की मात्रा केवल 0.70% तथा U-238 की मात्रा 99.3% के लगभग होती है। भारत में थोरियम (Th) के स्रोत (Deposit), यूरेनियम की अपेक्षा अधिक मात्रा में हैं। यही नहीं भारत थोरियम के स्रोतों में संसार में सबसे आगे है। इसीलिए भारत ने अपने परणाणु ऊर्जा कार्यक्रम में थोरियम तथा थोरियम से तैयार U-233 के प्रयोग की विस्तृत योजना बनायी है। यह थोरियम केरल तट पर सबसे अधिक उपलब्ध है। परिशोधित करने के पश्चात इसे भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई में स्थित सायरस रिएक्टर में रखकर U-233 में रूपांतरित किया जाता है। रूपांतरण की प्रतिक्रियाएं इस प्रकार होती हैं :

$$^{238}U + {}_0n^1 \text{-----} > {}^{239}U \xrightarrow[(23.5m)]{\beta^-} {}^{239}Np \xrightarrow[23.5d]{\beta^-} {}^{239}Pu$$

$$^{232}Th + {}_0n^1 \text{-----} > {}^{233}Th \xrightarrow[(22.3m)]{\beta^-} {}^{233}Pa \xrightarrow[27.4d]{\beta^-} {}^{233}U$$

रूपांतरित U-233 या Pu-239 के साथ कुछ विखंडन उत्पादन प्राप्त होते हैं। इन्हें अलग करना अपने आप में एक कौशलपूर्ण एवं बहुत कठिन कार्य है, जिसकी तकनीकी भारत में विकसित की जा चुकी है। यहीं पर डॉ. भाभा की दूर दृष्टि उल्लेखनीय है। उनकी अध्यक्षता में भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग ने विकास कार्यक्रमों की तीन श्रेणियां तैयार की थीं। पहले चरण में प्राकृतिक

यूरेनियम का उपयोग करके परमाणु भट्टी तैयार करना, जिसके अंतर्गत कोटा (राजस्थान), कल्पाक्कम (तमिलनाडु), नरोरा (उत्तर प्रदेश) परमाणु बिजलीघर तैयार किये गये। दूसरी श्रेणी में इन परमाणु रिएक्टरों में तैयार U-238 से P-239 को पृथक करना, और फिर पृथक किये गये प्लूटोनियम को द्रुत गति प्रजनक रिएक्टर (Fast breeder reactor) में ईंधन के रूप में प्रयुक्त करना शामिल है। साथ ही इस ईंधन के चारों ओर थोरियम का आवरण (blanket) रखना जिससे बिजली उत्पादन के साथ-साथ थोरियम को U-233 में रूपांतरित (न्यूट्रॉन बमबारी द्वारा) किया जा सके। रूपांतरित U-233 को अन्य परमाणु रिएक्टरों में उपयोग करना। इसी उद्देश्य के तहत कल्पाक्कम में द्रुत गति प्रजनक रिएक्टर तैयार हुआ है।

कामिनी रिएक्टर को संचालित करने की सफलता से U-233 को विखंडन उत्पादों से अलग करके उसे ईंधन के रूप में तैयार करने एवं रिएक्टर बनाने में होने वाली कठिनाइयों के बारे में जानकारी मिली। इस दौरान आवश्यक सुरक्षात्मक उपायों का भी अनुभव इसी योजना में प्राप्त हुआ।

संरचना :

इस परमाणु भट्टी की संरचना अप्सरा जैसे तरण तालाब (Swimming Pool) रिएक्टर के सदृश्य है। इसमें प्रयुक्त ईंधन U-233, यूरेनियम -एल्युमीनियम मिश्रधातु के रूप में रहता है। इसे पट्टियों के रूप में बनाया जाता है। मिश्रधातु में, वजन के आधार पर 20% U-233 होता है। ईंधन का बाह्य आवरण (क्लैडिंग) पतले एल्युमीनियम का बनाया जाता है। क्रोड (core) की धारिता 10 लीटर और यूरेनियम की मात्रा केवल 600 ग्राम रखी गयी है। क्रोड के बाहर बेरीलियम ऑक्साइड का परावर्तक और उसके समीप जिरकोलॉय का आवरण होता है। विखंडन के दौरान उत्पन्न और बाहर निकले (Leaked) न्यूट्रॉनों को परावर्तित करने और रिएक्टर को क्रांतिक करने में परावर्तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्रोड़ के चारों ओर निर्लवणीकृत जल होता है जो विमंदक (न्यूट्रॉन की गति कम करने), शीतलक (तापमान कम करने) और परिरक्षक (गामा तथा न्यूट्रॉन से परिरक्षण) का कार्य करता है। वस्तुतः यह सब एक स्टेनलैस स्टील की टंकी में रखा जाता है। इस टंकी के चारों ओर अधिक घनत्व (5 ग्रा./घन सेमी.) की कांक्रीट की ईंटें रखी होती हैं जो जैविक परिरक्षक का काम करती हैं। क्रोड तथा परावर्तक के मध्य कैडमियम की प्लेटें होती हैं जिनको रिएक्टर शुरू करने, ऊर्जा नियंत्रित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। उल्लेखनीय है कि न्यूट्रॉन का प्रभावी अवशोषक होने के कारण कैडमियम का उपयोग रिएक्टर को तत्काल बंद करने में भी है। परमाणु रिएक्टर की स्थिति जानने के लिए यथावश्यक जगहों पर न्यूट्रॉन संसूचक तथा सुरक्षा उपकरण रखे गये हैं। यह एक सुरक्षित रिएक्टर है क्योंकि इसका तापमान एवं रिक्त (Void) अभिक्रियाशीलता गुणांक ऋणात्मक रखा गया है। रिएक्टर की शक्ति बढ़ने से तापमान बढ़ता है जिससे न्यूट्रॉन की गति बढ़ती है। फलतः विखंडन मंद हो जाता है। दूसरे, तापमान बढ़ने से पानी की रिक्तता बढ़ती है और घनत्व कम होने से विखंडन प्रक्रिया की गति कम हो जाती है।

अनुप्रयोग :

इस रिएक्टर का उपयोग मुख्यतः ईंधन परीक्षण के लिए होगा। चूंकि ईंधन स्वयं में गामा किरणों का स्रोत होता है इसलिए ईंधन परीक्षण के लिए गामा एक्स-रे रेडियोग्राफी के स्थान पर न्यूट्रॉन रेडियोग्राफी उपयुक्त होती है। कामिनी रिएक्टर एक न्यूट्रॉन स्रोत के रूप में प्रयुक्त करके ईंधन की रेडियोग्राफी की जा सकती है। इस रिएक्टर में न्यूट्रॉन अभिवाह (फ्लक्स) 10^{12} न्यूट्रॉन/सेमी^{2}/सेकंड है। तीन जगहों पर न्यूट्रॉन पुंज उपलब्ध है जिनमें से एक ईंधन परीक्षण हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। इसके अलावा अपराध अन्वेषण (Forensic) अनुसंधान के लिए भी इस रिएक्टर का उपयोग हो सकता है। इन सभी कामों के लिए एक विशेष तप्तकोष्ठ (Hot Cell) होता है जिसे एक खास बनावट की रिंग से जोड़ा जाता है ताकि न्यूट्रॉन पुंज सामान्य पर्यावरण में प्रवेश किये बिना तप्तकोष्ठ पर रखे सैंपल की न्यूट्रॉन रेडियोग्राफी करने में प्रयुक्त हो सके।

यूरेनियम-233 के खतरे :

यूरेनियम-233 एल्फा (α) विकिरण उत्सर्जित करता है, जिसकी ऊर्जा 4.8 MeV एवं अर्धायु 159,000 वर्ष होती है। इसलिए इसे प्रयोग में लाते समय बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है। इसकी विशिष्ट रेडियो धर्मिता 352 मैगा बेकेरल/ग्राम या 9.5 मिली क्यूरी/ग्राम होती है जो प्राकृतिक यूरेनियम के मुकाबले बहुत अधिक है। रासायनिक पृथक्करण के बाद भी काफी लंबे अरसे तक इसके विघटन उत्पादों (daughter products) का रेडियो धर्मिता में सहभाग रहता है। बीटा (β) किरणों का ईंधन में पूरा अवशोषण हो जाता है इसलिए बाह्य खतरे की संभावना कम रहती है।

यूरेनियम-232, हमेशा यूरेनियम-233 के साथ ही साथ मिलता है किंतु इस मिश्रण में U-232 की मात्रा अत्यंत कम (कुछ पी. पी. एम.) होती है। इत कम होने के बावजूद भी इसके विघटन उत्पादों की रेडियोधर्मिता अधिक रहती है। U-232 की अर्धायु 71.7 वर्ष है जो U-233 की तुलना में कम है। इसी कारण U-233 के विघटन उत्पादों की सक्रियता, विशेष रूप में बिस्मथ-212 और थैलियम-208 के कारण बढ़ जाती है। इनसे उच्च ऊर्जा के गामा विकिरण 2.164 MeV (जैसे गामा थैलियम-208) उत्सर्जित होते हैं और फलस्वरूप डोज़ (dose) की मात्रा बढ़ने से बाह्य खतरे बढ़ जाते हैं। वस्तुतः डोज़ की मात्रा दो बातों पर निर्भर रहती है; एक तो ईंधन में U-232 का अंश तथा दूसरा ईंधन की आयु। आयु से मतलब यह है कि अंतिम रासायनिक पृथक्करण के बाद का बीता समय। उदाहरण के लिए पूर्णिमा-2 के लिए प्रयुक्त ईंधन में केवल 2.8 पी. पी. एम. U-232 की मात्रा थी। फिर भी अंतिम रासायनिक पृथक्करण के 10 महीने बाद डोज़ की मात्रा 200 मिली रॉन्जन (mR) प्रति घंटे से 40 महीनों बाद तक 400 मिली रॉन्जन प्रति घंटे तक बढ़ी। इससे स्पष्ट है कि U-232 की सूक्ष्म मात्रा भी काफी खतरनाक हो सकती है।

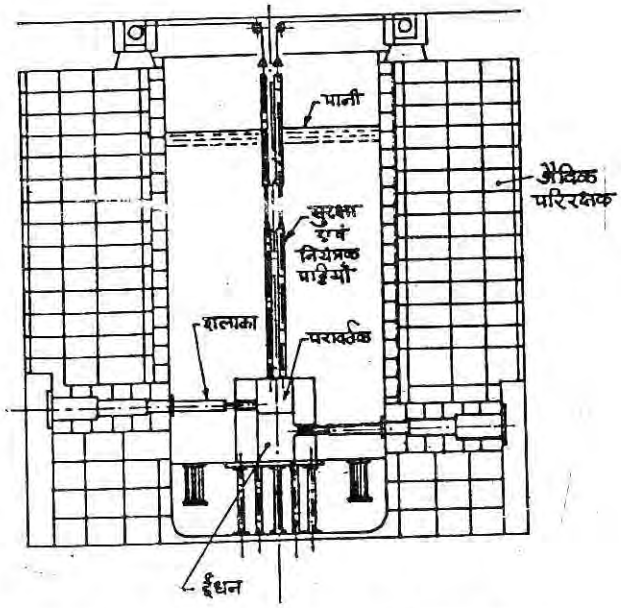

कामिनी परमाणु रिएक्टर की संरचना

कामिनी परमाणु रिएक्टर का निर्माण भा. प. अ. केंद्र तथा इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों एवं अभियंताओं की बौद्धिक कुशलता के फलस्वरूप सफल हुआ। रिएक्टर का प्रारूप, ईंधन, परावर्तन, सुरक्षा उपकरण और नियंत्रण भा. प. अ. केंद्र में तथा टंकी, जैविक परिरक्षक, विशेष रोशनदान (Ventilation) तथा जल पद्धति का विकास इंदिरा गांधी परमाणु अनुसंधान केंद्र में किया गया। इसमें संदेह नहीं कि कामिनी रिएक्टर सुविधा न केवल विश्वविद्यालयों तथा अनुसंधान केंद्रों में चल रहे परमाण्विक शोध कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान देगी बल्कि थोरियम तकनीकी के विकास और परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों को भी इससे बल मिलेगा।

❐❐❐

जैव पीड़कनाशी

डॉ. राज नारायण पांडेय एवं डॉ. प्रसून कुमार मुखर्जी,
नाभिकीय कृषि एवं जैव-तकनीकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

कीटनाशी रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से जहाँ एक ओर पर्यावरण का ह्रास हो रहा है, वहीं दूसरी ओर कई कीटों में इनके प्रति प्रतिरोधशक्ति भी उत्पन्न हो गयी है। फसलों को कीटों और बीमारियों से बचाने के लिए रासायनिक पदार्थों के विकल्प के रूप में सूक्ष्मजीवों के प्रयोग से जैवपीड़कनाशी उत्पाद निर्मित किये गये हैं। प्रस्तुत लेख में विविध प्रकार के जैवपीड़कनाशी उत्पादों का विवरण दिया गया है।

फसलों की अच्छी पैदावार के लिए उत्तम किस्म के बीज, उपयुक्त मिट्टी, सिंचाई आदि की व्यवस्था के साथ-साथ उन्हें कीड़े-मकोड़ों और बीमारियों से बचाना भी आवश्यक होता है। कीड़ों-बीमारियों से फसलों की रक्षा के लिए कीटकनाशी रसायनों का प्रयोग किया जाता है। इनके अत्यधिक प्रयोग से जहाँ एक ओर पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या आ खड़ी हुई है, वहीं दूसरी ओर कीटों ने इन रसायनों के प्रति प्रतिरोधशक्ति उत्पन्न कर ली है। ऐसे भी उदाहरण सामने आये हैं, जहां कीटकनाशकों के प्रयोग से फसल को अधिक क्षति हुई है, अपेक्षाकृत उनके जहां कीटनाशकों का प्रयोग नहीं किया गया। कीटों का प्रकोप कभी-कभी इतना भीषण हो जाता है कि सारी की सारी फसल नष्ट हो जाती है। ऐसी स्थितियों से निराश होकर कृषकों द्वारा आत्महत्याएं करने की घटनाओं के समाचार मिले हैं। इन परिस्थितियों से निबटने के लिए आवश्यक है कि कीटों के नियंत्रण के लिए कीटकनाशी रसायनों के विकल्प खोजे जायें। इस दिशा में कुछ वर्षों से वैज्ञानिक, कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं के प्रयोग द्वारा कीटों के जैवनियंत्रण की विधि विकसित करने में लगे हैं और उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली है। आज बहुत से जैव उत्पाद बाजारों में उपलब्ध हैं, जो पर्यावरण को बिना क्षति पहुंचाये फसलों को कीड़े-मकोड़ों तथा बीमारियों से बचाने में सक्षम हैं। इन उत्पादों को जैवकीटनाशी या जैवपीड़कनाशी या 'बायोपेस्टीसाइड' कहा जाता है।

जैवपीड़कनाशकों का निर्माण :

बायोपेस्टीसाइड के अंतर्गत जीवाणु, फफूंद, विषाणु, सूत्रकृमि आदि सूक्ष्मजीव शामिल हैं, जिन्हें विशेष नुस्खे के अनुसार तैयार करके कीटों, पादपरोगकारकों तथा खर-पतवार के नियंत्रण हेतु एक जैव उत्पाद के रूप में बेचा जाता है। बायोपेस्टीसाइड के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया में बायोपेस्टीसाइड की खोज, उसका निर्माण तथा पंजीकरण का समावेश होता है। बायोपेस्टीसाइड की खोज के लिए एक विशिष्ट क्षेत्र में कीट-विशेष का अध्ययन करके उसके रोगजनक सूक्ष्मजीवों का पता लगाया जाता है। अध्ययन हेतु देश में उपलब्ध सूक्ष्मजीवों या बाहर से लाये गये सूक्ष्मजीवों का परीक्षण किया जाता है। रोगजनक सूक्ष्मजीवों की खोज हो जाने पर उसकी कार्यक्षमता, विशिष्टता, अनुवांशिक स्थिरता, भारी संख्या में प्रजनन क्षमता, प्रयोग की सुरक्षा तथा निर्माण की सरलता आदि का अध्ययन किया जाता है। खोजे गये सूक्ष्मजीव के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए उसकी पोषण-आवश्यकता तथा संवर्धन दशाओं का मानकीकरण किया जाता है। प्रयोग हेतु 'तैयार उत्पाद' का रूप देने के लिए जैवनियंत्रक सूक्ष्मजीव के संवर्धन (कल्चर) में तनुकारक या तल सक्रिय पदार्थ मिलाये जाते हैं। इसके

लिए प्राय: खाद्य-आधारित वस्तुएं 'कल्चर' में मिलायी जाती हैं, जिससे सूक्ष्मजीव को प्रारंभिक स्थिरता प्रदान करने में मदद मिले। बायोपेस्टीसाइड उत्पाद के तैयार हो जाने पर उसका पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) कराना आवश्यक होता है। विभिन्न देशों में बायोपेस्टीसाइड के पंजीकरण के नियम उदार हैं और इनका पंजीकरण आसानी से हो जाता है। इसके विपरीत संश्लेषित रासायनिक कीट नाशकों का पंजीकरण आसानी से नहीं होता। इसका कारण यह है कि संश्लेषित रसायन प्रकृति के लिए एक अपरिचित या भिन्न पदार्थ होते हैं, जबकि बायोपेस्टीसाइड में प्रयुक्त सूक्ष्मजीव प्रकृति के ही अंग होते हैं, केवल उन्हें भारी संख्या में संवर्धित कर पुन: प्रकृति में प्रवेश कराया जाता है।

व्यापारिक स्तर पर उपलब्ध जैवपीड़कनाशी :

कीटों, पादपरोगों तथा खर पतवार के नियंत्रण के लिए अनेक बोयोपेस्टीसाइड आज देश-विदेश में उपलब्ध हैं। कुछ जैवपीड़कनाशकों का विवरण तालिका-1 में दिया गया है। जीवपीड़कनाशी मुख्यत: जीवाणु (बैक्टीरिया), फफूंद (फंगस), विषाणु (वायरस) तथा सूत्रकृमि (निमेटोड)• पर आधारित हैं।

जीवाणु आधारित जैवकीट नाशी :

इस प्रकार के जैव-कीटनाशकों के निर्माण में 'बैसिलस थुरिंजिएसिस' (बी. टी.) नामक जीवाणु का प्रयोग सर्वाधिक सफल पाया गया है। इस जीवाणु की 30 से भी अधिक उपजातियां खोजी गयी हैं, जो विविध वर्गों - जैसे लेपिडोप्टेरा, डाइप्टेरा, कोलिओप्टेरा आदि के कीटों के लिए रोगजनक हैं। बी. टी. पर आधारित अनेक जैवकीटनाशी उत्पाद अमरीका में सर्वाधिक उपयोग में लाये जाते हैं।

विषाणुओं का प्रयोग :

कुछ विशेष प्रकार के विषाणु या वायरस भी जैवकीटनाशकों के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। एन. पी. वी. (न्यूक्लियर पॉली हेड्रोसिस वायरस) तथा जी. वी. (ग्रेनुलोसिस वायरस) नामक विषाणुओं का प्रयोग जैवकीटनाशी के रूप में किया जाता है। इन विषाणुओं की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक विशेषता किसी भी ज्ञात पादप या कशेरुकी प्राणियों के विषाणुओं से नहीं मिलती। ये पूर्ण रूप से कीट-विशिष्ट हैं। अत: इनके प्रयोग से किसी भी स्तनधारी प्राणी या वन्यजीवन को कोई खतरा नहीं होता। तथापि व्यापारिक स्तर पर विषाणु कीटनाशकों का प्रयोग अधिक लोकप्रिय नहीं है। क्योंकि इनके संवर्धन के लिए कीटों के लारवों की जरूरत होती है, तथा इनके द्वारा कीटों को नष्ट करने की दर धीमी होती है। साथ ही विषाणु-कीटनाशी का पंजीकरण कराना भी अपेक्षाकृत कठिन होता है।

फफूंद आधारित जैवकीटनाशी :

रोगकारक फफूंद कीटों के शरीर में सीधे त्वचा (क्यूटिकल) से होकर प्रवेश कर सकते हैं, जबकि जीवाणु तथा विषाणु कीटों के पेट के जरिए प्रवेश पाते हैं। रोगकारी फफूंद कई प्रकार के कीटों, जैसे एफिड, लीफहॉपर, कैटरपिलर, बीटिल आदि को नष्ट करने में सक्षम हैं। अब तक करीब चार प्रकार के फफूंद जैवकीटनाशी के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं, तथा इनके उत्पाद बाजारों उपलब्ध हैं। ब्यूवेरिया बैसिना (Beuvaria bassina) नामक कवक से 'बोवराल' तथा 'बोवरिन' नामक उत्पाद रूस तथा चेकोस्लोवाकिया में 'कोलोरेडोबीटिल' तथा 'काडलिंग माथ' जैसे कीटों को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। 'मेटाराइजियम एनिसोपोली' (Metarhizium anisopoliae) नामक कवक से निर्मित 'मेटाक्विनो' नामक उत्पाद ब्राजील में 'स्पिटिल बग' के नियंत्रण के लिए इस्तेमाल किया जाता हैं। 'वर्टिसिलियम लेकानाइ' (Verticillium lecanii) नामक कवक से निर्मित उत्पाद "वेर्टालेक' तथा 'माइकोटाल' के नाम से एफिड तता 'वाइट फ्लाई' को नष्ट करने के लिए ब्रिटेन में प्रयोग किये जाते हैं। 'हिरसुटेला थाम्पसोनाइ' (Hirsutella thompsonii) से तैयार किया गया 'माइकर' नामक उत्पाद 'साइट्रस रस्ट माइट' के नियंत्रण के लिए अमरीका में प्रयुक्त किया जाता है।

तालिका 1: व्यापारिक स्तर पर उपलब्ध जैवकीटनाशी :

कीटनाशी उत्पाद में प्रयुक्त सूक्ष्मजीव	लक्ष्यकीट	उत्पाद एवं निर्माता
जीवाणु - (बैक्टीरिया) बैसिलस थुरंजिएन्सिस प्रजाति - कुर्सटाकी (*Kurstaki*)	लेपिडोप्टेरा वर्ग के लारवा	थुरीसाइड (सैंडोज, यूएसए), डाइपेल (ऐबट, यूएसए), कटलास (एकोजेन, यूएसए)
प्रजाति - इज़रायलेंसिस (*israelensis*)	मच्छरों तथा ब्लैक फ्लाई के लारवे	टेकनार (सैंडोज, यूएसए), वेक्टोबैक (ऐबट यूएसए), बैक्टीमास (बायोकेम, यूएसए), स्कीटल (एन्टोटेक, यूएसए), अटैक (रिंजर, यूएसए), एल्टोसिड (झूकान, यूएसए) ।
प्रजाति - टेनीब्रिउइस (*tenebriouis*)	विभिन्न फसलों के बीटल (*beetles*)	एम-1, एम-ट्रैक (माइकोजेन, यूएसए), ट्राइडेंड (सैंडोज, यूएसए), नोवोडोर (एंटोटेक, यूएसए), फ्लायल (एकोजेन, यूएसए) ।
बैसिलस थुरंजिएन्सिस (*B. t.*)	वैक्स माथ	सेर्टान (सैंडोज. यूएसए) ।
बैसिलस थुरंजिएन्सिस (*B. t.*)	कैटर पिलर	टॉपसाइड डाइपेल (इनसेक्ट्स लि. यूएसए), बग टाइम, बैक्टुर (बायोकेम, यूएसए) लारवों (फेअरफैक्स, यूएसए), बैक्टोस्पीन (कोपर्ट, यूएसए), जवेलिन (सैंडोज, यूएसए), एक्लार (सैंडोज, यूएसए) ।
विषाणु (वायरस) - एन पी वी - जीवी निमेटोड - स्टीनरनेमा कार्पोकैप्सी (*Steinernema carpocapsa*)	हेलिकोवेर्पा जाति के कीट लैस्पीरेसिया जाति के कीट सब्जी, फल तथा लॉन घास में लगने वाले कीड़े	एसएएन-406 (सैंडोज, यूएसए) । बायोसेफ (बायोसिस, यूएएसए), सेफर (रिंजर, यूएसए), बायसेफ-एन (बायोरिस, यूएसए), बायोवेक्टर (बायोसिस, यू एस ए), एक्जिबिट (सीबागायगी, यूएसए), सैनोप्लांट (डॉ. माग, स्विटजरलैंड) ।
स्टीनरनेमा फेल्टी (*Steinernema feltiae*)	आलंकारिक पौधों में लगने वाले कीड़े	नेमासिस (एग्रीकल्चरल जेनेटिक्स कं., यूके) ।
स्टीनरनेमा स्पीसीज	कृषि उद्यानिकी तथा वानिकी के पौधों में लगने वाले कीड़े	पियानबायोट, टरिक्स (बायोर, एस आर एल, इटली) ।
हेटरोरैब्डाइटिस मेगिडिस (*Heterorhabditis megidis*)	पौधघर के पौधों में लगने वाले कीड़े	निमेसिस-एच (एग्रीकल्चरल जेनेटिक्स कं., यूके) । ओटिनेम (डॉ. माग, स्विटजरलैंड) ।
हेटरोरैब्डाइटिस बैक्टीरीफोरा (*Heterorhabitis bacterifora & Heterorhabditis species*)	पौधघर के पौधों में लगने वाले कीड़े	फाइटाग्रब (फारग्रो. यूके) ।

सूत्रकृमि पर आधारित जैव कीटनाशी:

कुछ प्रकार के सूत्रकृमि कीटों में रोग उत्पन्न करने में सक्षम हैं । 'हेटरोरैब्डाइटिस' (Heterorhabditis) तथा 'स्टीनरनेमा' (Steinernema) नामक सूत्रकृमि मिट्टी के अंदर व्यापक रूप से पाये जाते हैं, और मिट्टी में रहने वाले अनेक प्रकार के कीटों को नष्ट करने में सक्षम हैं । ये सूत्रकृमि 'जेनोरैब्डस' (Xenorhabdus) नामक जीवाणु के सहजीवी हैं । ये जीवाणु सूत्रकृमि के तरु ण लारवा की आंत में पहुंच जाते हैं । यह तरुण लारवा कीट के शरीर में प्रवेश कर अनेक जीवाणु मुक्त करता है जो भारी संख्या में बढ़ कर कीट की मृत्यु कर देते हैं । सूत्रकृमि का प्रजनन जीवाणु तथा मृत ऊतकों से पोषण प्राप्त करके संपन्न होता है । बिना सूत्रकृमि की सहायता के जीवाणु कीट के शरीर में प्रवेश नहीं कर सकते, और बिना जीवाणुओं के सूत्रकृमि अपना प्रजनन नहीं कर सकते ।

खर-पतवारों का जैवनियंत्रण :

विकसित देशों में खर-पतवार (अवांछित वनस्पतियां) नष्ट करने के लिए शाकनाशी (हर्बीसाइड) रसायनों का प्रयोग किया जाता है । अब शाकनाशी रसायनों के विकल्प के रूप में कुछ कवकों का प्रयोग जैवशाकनाशी के रूप में प्रचलित हो रहा है । चार प्रकार के कवकों को जैवशाकनाशी (बायोहर्बीसाइड) के रूप में पंजीकृत किया गया है । ये हैं - फाइटोफ्थोरा पाल्मीवोरा (Phytophthora palmivora), 'कोलेटोट्राइकम ग्लोइओस्पोरिवाइडिस एफ. एस पी. एसकाइनोमिन (Colletotrichum gloeosporioides f. sp. aeschynomene), 'आल्टरनेरिया कैसी' (Alternaria cassiae) तथा 'कोलेटोट्राइकम ग्लोइओस्पोरिवाइडिस एफ. एस पी. 'माल्वी' (Collectotrichum gloeosporioides f. sp. malvae).

'फाइटोफ्थोरा पाल्मीवोरा' 'मोरेनिया ओडोरेटा' (Morrenia odorata) नामक पौधे में रोग उत्पन्न करके उसे नष्ट करता है । 'मोरेनिया ओडोरेटा' (मिल्कवीड वाइन) अमरीका में नीबू के बागानों में खर-पतवार के रूप में उगकर एक बड़ी समस्या उत्पन्न करता है । इसके नियंत्रण के लिए 'फाइटोफ्थोरा पाल्मीवोरा' फफूंद के बीजाणुओं का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना कारगर सिद्ध हुआ है, एक बार के छिड़काव का असर दो वर्ष तक रहता है ।

'कोलेटोट्राइकम ग्लोइओस्पोरिवाइडिस एफ. एसपी. एस्काइनोमिन' का प्रयोग अमरीका में 'एस्काइनोमिन वर्जीनिका' (Aeschynomene virginica) नामक पौधे के नियंत्रण के लिए किया जाता है । इस कवक उत्पाद को 'कोलोगो' नाम दिया गया है ।

'आल्टरनेरिया कैसी' नामक कवक का प्रयोग अमरीका में 'कैसिया आबटुसीफोलिया' (Cassia occidentalis) नामक पौधों को नष्ट करने के लिए किया जाता है । कवक - उत्पाद 'कास्ट' (Casst) नाम से बजारों में बिकता है ।

'कोलेटोट्राइकम ग्लोइओस्पोरिवाइडिस एफ.एसपी. माल्वी' कनाडा में 'बायोमाल' (Biomal) के नाम से पंजीकृत है । यह कवक 'माल्वा पुसिला' (Malva pusilla) नामक पौधे में रोग उत्पन्न करता है । 'माल्वा पुलिसा' कनाडा में फसलों के लिए अति हानिकारक खरपतवार के रूप में उगता है ।

पादपरोग नियंत्रण में जैव पीड़कनाशी :

पादप रोगों के नियंत्रण में कई जातियों के कवक तथा जीवाणु, शत्रु या प्रतिद्वंदी (एंटागोनिस्ट) के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं । ब्रिटेन तथा अमरीका में 'फ्लेबिया जाइगैंशिया' (Phlebia gigantia) नामक कवक का प्रयोग शंकुधारी पौधों में अंतः सड़न (हार्ट रॉट) उनत्पन्न करने वाले 'हेटरोबेसिडिओन एनोसम' (Heterobasidion annosum) नामक फफूंद के नियंत्रण के लिए किया जाता है । आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा अमरीका में पौधों में 'क्राउन गाल' (Crown gall) रोग उत्पन्न करने वाले 'एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेसिन (Agrobacterium tumefaciens) नामक जीवाणु के नियंत्रण के लिए 'एग्रोबैक्टीरियम रेडियोबैक्टर (Agrobacterium radiobactor) नामक जीवाणु का

प्रयोग किया जाता है। ब्राजील तथा आस्ट्रेलिया में नीबू जाति के पौधों में रोग उत्पन्न करने वाले 'साइट्रस ट्रिस्टेजा वायरस' का नियंत्रण इसी विषाणु के एक अन्य प्रभेद (Strain) द्वारा किया जाता है। कनाडा, ब्रिटेन, हॉलैंड, जापान आदि में टमाटर के रोगकारी विषाणु 'टोबैको मोजैक वायरस' का नियंत्रण इसी विषाणु के एक मृदु प्रभेद द्वारा किया जाता है। इटली तथा फ्रांस में चेस्टनट ब्लाइट' रोग उत्पन्न करने वाले फफूंद 'क्रिपटोनेक्ट्रिया पैरासिटिका' (Cryptonectria parasitica) के नियंत्रण के लिए एक 'माइकोवायरस' का प्रयोग किया जाता है। अनेक यूरोपीय देशों तथा अमरीका में मिट्टी में पाये जाने वाले कई पादपरोगकारकों को नष्ट करने के लिए 'ट्राइकोडर्मा' (Trichoderma spp.) जाति के कवकों का प्रयोग किया जाता है। पादप रोगों के नियंत्रण में प्रयुक्त होने वाले कुछ सूक्ष्मजीवों का विवरण तालिका-2 में दिया गया है।

जैवपीड़कनाशी के प्रयोग में बाधाएं :

जैवनियंत्रण द्वारा फसलों की रक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त अनुसंधान के बावजूद भी जैवपीड़कनाशियों का प्रयोग व्यापक नहीं हो पा रहा है, और अभी भी रासायनिक पदार्थों का प्रयोग ही विस्तृत रुप से हो रहा है। इसका कारण यह है कि जैवपीड़कनाशी के विकास में कुछ अड़चनें आती हैं। चूंकि जैवपीड़कनाशी जीवित तंत्र का निर्माण करते हैं, अतः उनकी कार्यक्षमता मौसम की दशा पर निर्भर होती है। इसके अलावा जैवपीड़कनाशी उत्पाद को काफी दिन तक सुरक्षित रखने की भी एक समस्या होती है।

भारत में जैवपीड़कनाशी का निर्माण :

1963 से ही बी. टी. पर आधारित कई जैवकीटकनाशी उत्पाद जैसे - 'बायोबिट', 'थ्यूरीसाइड', बायोट्रोल, 'डाइपेल' इत्यादि भारतीय वैज्ञानिकों को अनुसंधान हेतु उपलब्ध कराये जाते रहे हैं। कुछ परीक्षणों में गन्ना, मूंगफली, धान, चना, गोभी आदि के खेतों में जैव-कीटकनाशियों के छिड़काव से कीटों पर नियंत्रण करने में सफलता मिली है। भारतीय केंद्रीय कीटकनाशक बोर्ड ने मे. 'सैंडोज इंडिया' तथा ल्यूपिन (Lupin) को क्रमशः 'डेल्फिन' तथा 'डाइपेल' नामक जैवकीटनाशी उत्पाद के निर्माण एवं विक्रय हेतु पंजीकरण की अनुमति प्रदान की है। मे. 'इन्नोवेटिव पेस्ट कंट्रोल लैबोरेटरी' बैंगलूर को 'एन पी. वी - वायरस तथा 'स्टीनरनीमा' (Steinernema sp.) जाति के निमेटोड, 'मेटाराइजियम' (Metarhizium sp.) एवं 'ट्राइकोडर्मा' जाति के कवकों से निर्मित जैवपीड़कनाशी की व्यापारिक आपूर्ति करने की मान्यता मिली है।

पादप उत्पादों का जैवपीड़कनाशी के रूप में प्रयोग :

दुनिया में करीब 600 जातियों के पौधों में हानिकारक कीटों को नष्ट करने की क्षमता है। इनमें नीम प्रमुख है। नीम के निष्कर्ष करीब 200 प्रकार के कीटों के नियंत्रण में कारगर सिद्ध हुए हैं। मूंगफली के मूलसड़न, जूट के तनासड़न, बैंगन के मूलसड़न, टमाटर तथा मिर्ची की पत्तियों के मुड़ने की बीमारियों में भी नीम के निष्कर्ष कारगर पाये गये हैं। इसी तरह गेंदे के फूल में कीट विकर्षण के गुण पाये गये हैं। टमाटर, आलू तथा मटर की पंक्तियों के साथ-साथ गेंदे की पंक्ति लगाने से उनमें सूखा रोग (विल्ट) नहीं लगता। कई पौधों की पत्तियों के निष्कर्ष रोग नियंत्रण में प्रभावी होते है। भिंडी, पपीता, अमरुद, धतूरा, कनेर, पुदीना आदि की पत्तियों का रस धान तथा गेहूं की गेरई (रस्ट) बीमारी के नियंत्रण में प्रभावकारी है। धान के भूरे धब्बे (ब्राउन स्पॉट) रोग के नियंत्रण में सरसों, लाल पत्ता (यूफोर्बिया पल्चेरिमा) तथा शकरकंद की पत्तियों का निचोड़ टमाटर और मिर्ची में पत्तियों के मुड़ने की बीमारी पर नियंत्रण करता है। अनेक सब्जी तथा फलों की बीमारियों के नियंत्रण में सहिजन, सदाफुली (विनका रोजिया), महुआ, तंबाकू, सिट्रोनेला घास, कुरची, तुलसी इत्यादि की पत्तियों का निष्कर्ष उपयोगी है। अरंडी का तेल मक्का तथा अन्य फसलों में बीविल (घुन), एफिड तथा केटरपिलर आदि की रोकथाम में सहायक है। पाइरेथ्रम (क्राइसैंथिमम सिनेरेरीफोलियम) के सूखे फूलों से प्राप्त उत्पाद अनेक

तालिका 2 : पादपरोग नियंत्रण में प्रयुक्त शत्रु (एंटागोनिस्ट) सूक्ष्मजीव :

शत्रु सूक्ष्मजीव (एंटागोनिस्ट)	लक्ष्य रोगकारक एवं रोग	उत्पाद एवं निर्माता
जीवाणु (बैक्टीरिया) :		
एग्रोबैक्टीरिया रेडियोबैक्टर	एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेरिएन्स - फल-वृक्षों, गुलाब और सरसों कुल के पौधों में लगने वाला क्राउन गाल रोग	डाइगाल (न्यूजीलैंड केमिकल कं.) गालट्रोल, गालक्स (एजी बायोकेम, यूएसए), नोगाल रूटनाड्यूल प्रा. लि. आस्ट्रेलिया), नोरबाक 84-सी (न्यू बायो प्राडक्ट, यूएसए)
स्यूडोमोनास फ्लुओरिसेंस (*Pseudomonas fluorescens*)	पिथियम अल्टीमम (*Pythium ultimum*), राइजोक्टोनिया सोलानी (*Rhizoctonia solani*)- कपास का डैंपिंग आफ रोग	डैगर जी (एकोजेन, यूएसए)
स्ट्रेप्टोमाइसेज ग्रीसिओविरिडिस (*Streptomyces griseoviridis*)	आल्टरनेरिया ब्रासीसीकोला (*Alternaria brassicicola*), सरसों कुल के पौधों में डैंपिंग ऑफ रोग; फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम एफ. एसपी. डायन्थी (*Fasasium oxysporum f. sp. dianthi*)- कॉर्नेशन का सूखा रोग	माइकोस्टाप (कैमिरा कं; फिनलैंड)
बैसिलस सबटिलिस (*Bacillus subtilis*)	मिट्टी में मौजूद कई कवक	क्वांटम 4000 (गुस्टाफ्सन, यूएसए)
कवक (फंगस) :		
कोनिओथाइरियम मिनिटन्स (*Coniothyrium minitans*)	स्कलेरोशीनिया स्कलेरोटिओरम (Sclerotinia sclerotiorum)- सूरजमुखी की बीमारियाँ	कोनिओथ्रिन (रूस सरकार)
फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम (*Fujarium oxysporum*) (अरोगकारक)	'फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम एफ. एसपी. बटाटास' - शकरकंद का सूखा रोग	जापान सरकार
ग्लायोक्लेडियम वाइरेन्स (*Gliocladium vireins*)	पिथियम अल्टीमम, राइजोक्टोनिया सोलैनी - कई फसलों की 'डैंपिंग ऑफ' बीमारी	ग्लायोगार्ड (डब्ल्यू. आर. ग्रेस एंड कं. यूएसए)
फ्लेबिया जाइगेंटिया	हेटरोबैसिडिअन एन्नोसम - चीड़ का अंतः तना सड़न रोग	पी. जी. सस्पेंशन (इकोलॉजिकल लैब, यूके)
पिथियम ओलीगैंड्रम (*Pythium oligandrum*)	पिथियम अल्टीमम - चुकंदर का डैंपिंग ऑफ रोग	पॉलीगैंड्रान (विझकुमुस्तोव, चेकोस्लोवाकिया)

तालिका-2 अगले पृष्ठ पर जारी

तालिका 2 : (जारी)

शत्रु सूक्ष्मजीव(एंटागोनिस्ट)	लक्ष्य रोगकारक एवं रोग	उत्पाद एवं निर्माता
ट्राइकोडर्मा स्पीसीज *(Trichoderma sp.)*	बोट्राइटिस *(Botrytis)*, पिथियम, स्कलेरोशीनिया, वर्टिसिलियम *(Verticillium)* जाति के कवक - फलों तथा सब्जियों में लगने वाले रोग सेरेटोसाइस्टिस अल्मी (डच एल्म रोग) *(Ceratocystis ulmi)* कोंड्रो स्टेरियम परप्यूरियम (ओक की पत्ती का रोग) *(Chondrostereum purpureum)* एंडोथिया पैरासिटिका *(Endothia parasitica)*	ट्राइकोडमिन (बुल्गेरिया तथा रूप की सरकार ट्राइकोडेक्स (मख्तेशिम केम. कं., इज़रायल) एफ-स्टाप (ईस्ट मैन कोडक कं, यूएसए)

कीटों तथा घरेलू मक्खी-मच्छरों को मारने या दूर भगाने में कारगर हैं । लहसुन का निष्कर्ष कई कीटों तथा बीमारियों से फसलों की रक्षा करने में कार्यक्षम है। इसी तरह हल्दी, कुश, जूट, मेथी, नारियल, चंपा, काजू, बेल इत्यादि पौधों से प्राप्त उत्पाद विभिन्न कीटों तथा बीमारियों का नियंत्रण करने में सक्षम हैं ।

इस तरह सूक्ष्मजीवों तथा पादप-उत्पादों के प्रयोग से फसलों के कीटों तथा बीमारियों का नियंत्रण एक पर्यावरण हितैषी कदम होगा । वर्तमान परिस्थितियों में कीटनाशी रसायनों को पूर्ण रूप से जैवकीटनाशकों द्वारा प्रतिस्थापित करना संभव नहीं होगा, तथापि धीरे-धीरे जैवकीटनाशकों के अधिकाधिक प्रयोग से पर्यावरण ह्रास पर नियंत्रण पाया जा सकेगा । समग्रित कीट प्रबंधन में जैवकीटनाशकों का प्रयोग अवश्य ही लाभकारी सिद्ध होगा ।

❐❐❐

विज्ञान पहेलियां

1. एक तरह का पाउडर हूँ मैं, मुझे बनाया एस्पडिन ने ।
   पानी पी कर मैं जम जाता, भवन बनाने में काम आता ।

2. मैं छोटे को बड़ा बनाता, दूर रहे उल्टा कर देता ।
   मैं जादूगर तो शीशे का हूँ, प्रकाश को भी फैलाता हूँ ।

3. जितनी बिजली खर्च करो तुम, मैं बतलाऊं उसका मान ।
   कौन हूँ मैं, क्या नाम है मेरा, क्या तुमको है इसका ज्ञान ?

4. मैं हूँ हाइड्रोकार्बनों का मिश्रण, काम आता ईंधन के रूप में ।
   मुझे "चट्टान का तेल" भी कहते, मेरा घर पृथ्वी के गर्भ में ।

5. एक कार्बनिक रंगहीन निश्चेतक, क्लोरीन तीन हैं जिसमें ।
   मुझे बनाने वाले प्रथम रसायनज्ञ हैं जेम्स यंग सिंपसन ।

6. लकड़ी जल कोयला हुई, कोयला जल हुआ राख ।
   मैं देखो ऐसी जली, कोयला हुई न राख ।

(उत्तर)

1. *सीमेंट*
2. *उत्तल लेंस*
3. *विद्युत मीटर*
4. *पेट्रोलियम*
5. *क्लोरोफॉर्म*
6. *ईंधन-गैस*

अशफ़ाक अहमद
"उमर मंजिल", सनबीम टेलर्स के पीछे,
बक्शीपुर, गोरखपुर - 273 001

संपरिवर्तन विलेप

डॉ. ए. के. शर्मा
एसोसिएट, ऊष्मीय प्रक्रम अनुभाग,
इसरो उपग्रह केंद्र,
विमानपुरा पोस्ट, बैंगलूर - 560 017

संपरिवर्तन विलेप वस्तु के पृष्ठीय परिष्करण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज विशेष रूप से सूत्रीकृत संपरिवर्तन विलयन संक्षारण से बचाव के साथ ही क्रियागत गुण भी प्रदान करते हैं। एनोडीकरण तथा क्रोमीकरण विलेप सामान्य तथा अभियांत्रिक क्षेत्रों में उपयोग में लाये जाते हैं। व्यापारिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण होने के साथ साथ वातांरिक्ष प्रौद्योगिकी (aero-space technology) जैसे जटिल क्षेत्रों में इनका व्यापक उपयोग किया जाता है। प्रस्तुत लेख में महत्वपूर्ण एनोडीकरण तथा क्रोमीकरण विधियों के कुछ विशिष्ट पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

औद्योगीकरण के इस आधुनिक युग में पृष्ठीय परिष्करण (surface modification) एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संपरिवर्तन विलेप (conversion coating) वस्तु के एक या अधिक पृष्ठीय गुणधर्मों जैसे रासायनिक, यांत्रिक अथवा प्रकाशिक, को संशोधित करने में एक आदर्श साधन के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। इनका उपयोग संक्षारण संरक्षा सूक्ष्म-कठोरता (microhardness) बढ़ाने, सरकवां सतहों पर अपघर्षण कम करने, प्रलेपों/स्नेहकों को उन्नत आसंजन मुहैय्या कराने तथा ऊष्मीय/वैद्युत गुण प्रदान करने, आदि के लिए किया जाता है। संपरिवर्तन विलेप मुख्यतः दो प्रक्रियाओं द्वारा संपन्न किया जाता है; (i) एनोडीकरण, और (ii) क्रोमीकरण।

एनोडीकरण :

एनोडीकरण किसी धात्विक वस्तु पर रक्षक ऑक्साइड परत बनाने की एक वैद्युतरासायनिक अभिक्रिया है। इस प्रक्रिया को एक विद्युत-अपघटनी सेल में संपन्न किया जाता है। जिस वस्तु पर परत चढ़ानी होती है उसे एनोड तथा किसी उपयुक्त निष्क्रिय धातु को कैथोड के रूप में प्रयुक्त करते हैं। सेल में प्रयुक्त विद्युतअपघट्य (electrolyte) में से जब विद्युतधारा प्रवाहित की जाती है तब अभीष्ट वस्तु की सतह पर उसी पदार्थ का ऑक्साइड विलेप बन जाता है। यद्यपि संतोषजनक एनोडीकरण विभिन्न धातुओं पर निष्पादित किया जा सकता है, तथापि इनमें एल्युमीनियम तथा उसकी मिश्रधातुएं सर्वनिष्ठ हैं।

एल्युमीनियम तथा उसकी मिश्रधातुओं पर एनोडीकरण विभिन्न प्रयोजनों के लिए किया जाता है -

1. *सजावटी वस्तुओं के विलेपन में* - अपनी अंतर्निष्ठ सरंध्रीय प्रकृति के कारण एनोडीकरण विलेप अनेक आकर्षक रंगों में आसानी से उपयोग में लाया जा सकता है।
2. *वायुमंडलीय संक्षारण से बचाव के लिए* - एक क्रियाशील धातु होने के कारण एल्युमीनियम वायुमंडलीय ऑक्सीजन द्वारा तीव्रता से संक्षारित होता है। एनोडीकरण द्वारा धातु पर एल्युमीनियम ऑक्साइड की एक स्थायी, समरूप संरक्षी परत बन जाती है।
3. *स्नेहकों, प्रलेपों तथा आसंजकों आदि को उन्नत आधार प्रदान करने हेतु* - अपनी सरंध्रीय प्रकृति के कारण एनोडिक विलेप से स्नेहकों, प्रलेपों, आसंजकों तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों को मजबूत

आबंधन मिलता है ।

4. *परिघर्षण कम करने के लिए* - धातु से अधिक कठोर होने के कारण एनोडिक फिल्म गतिमान सतहों पर अपघर्षण करने में सहायता करती है । अतः सरकवां सतहों पर परिघर्षण कम करने के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त की जाती है ।
5. *ऊष्मीय तथा वैद्युत रोधन प्रदान करने हेतु* - एक मृत्तिका (ceramic alumina) विलेप होने के कारण एनोडिक फिल्म श्रेष्ठ ऊष्मीय तथा वैद्युत रोधन गुण प्रदान करती है । एनोडिक विलेप की ऊष्मीय चालकता, एल्युमीनियम धातु के 1/10 भाग के बराबर है तथा इसका द्रवांक 2050^{0} से. के आसपास है । मोटी तथा कठोर एनोडिक फिल्म घटकों को उत्तम ऊष्मा प्रतिरोध प्रदान करती हैं । इस प्रकार के घटक सूक्ष्मअंतरालों (मिलीसेकंड) के लिए असाधारण रूप से उच्च तापमानों को सहन कर सकते हैं ।
6. *शीत वेल्डनीयता रोकने के लिए* - ऊष्मा के उपयोग के बिना, आण्विक रूप से साफ सतहों के परस्पर होने वाले आसंजन को शीत-वेल्डन कहते हैं । कठोर एनोडीकरण अंतरिक्ष में शीतवेल्डनीयता रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।
7. *ऊष्मा विकिरणी गुण प्रदान करने लिए* - 1 माइक्रोन से अधिक मोटाई पर ऑक्साइड परत एक प्रभावशाली ऊष्मा विकिरक का कार्य करती है तथा इसकी प्रभाविकता मोटाई के साथ-साथ बढ़ती जाती है । 50 माइक्रॉन से अधिक मोटी फिल्म का अवरक्त उत्सर्जांक (ऊष्मा विकिरण सामर्थ्य) 90% के आसपास होता है । अतः इस प्रकार के विलेप के उपयोग से ऊष्मीय विकिरणी अभिलक्षण में सुधार आता है, विशेषकर अंतरिक्ष वातावरण में जहां वायुमंडल की अनुपस्थिति के कारण, विकिरण ऊष्मा स्थानांतरण की प्रबल संभावना होती है ।

एल्युमीनियम एनोडीकरण का असीम प्रौद्योगिकीय महत्व होने के कारण यह गहन अनुसंधान का विषय रहा है । संरचना तथा गुणधर्मों में नम्यता एनोडिक एलुमिना की एक अति आकर्षक विशिष्टता है । एनोडिक प्रक्रिया की अनुकूल अवस्थाओं के चयन से, संरचना, कठोरता, रासायनिक तथा अन्य गुणों में बृहत परिमाप में विविधता वाली ऑक्साइड फिल्म प्राप्त की जा सकती हैं । तालिका-1 में इन विधियों की कुछ विशेषताओं का विवरण दिया गया है ।

तालिका - 1

प्रकार	प्रक्रम	बिना सीलिंग के विलेप का भार, मिग्रा. /वर्ग फुट
प्रकार I	क्रोमिक अम्ल एनोडीकरण	200-700
प्रकार II	सल्फ्यूरिक अम्ल	1000 (न्यूनतम)
प्रकार III	एनोडीकरण	4320 (न्यूनतम)
वर्ग 1	कठोर एनोडीकरण	
वर्ग 2	अरंजित (Non-dyed) रंजित (Dyed)	

सल्फ्यूरिक अम्ल एनोडीकरण - सल्फ्यूरिक अम्ल एनोडीकरण व्यापक रूप से एक उपयोगी एनोडीकरण प्रक्रिया है । इस विधि द्वारा सामान्यतः दो प्रकार के विलेप प्राप्त किये जाते हैं - पारंपरिक तथा कठोर । पारंपरिक विलेपों का उपयोग प्रायः संरक्षी तथा अलंकारिक उद्देश्यों के लिए तथा कठोर विलेपों को अभियांत्रिकीय क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जाता है । विद्युतअपघट्य की ऑक्साइड फिल्म पर निम्नतर विलायक प्रतिक्रिया के साथ कठोर विलेप प्राप्त किये जाते हैं, फलतः ये पारंपरिक एनोडिक विलेपों से सघन तथा मोटे होते हैं ।

फिल्म निर्माण की क्रियाविधि :

जब वैद्युतअपघट्य में विद्युतधारा प्रवाहित की जाती है तो उसका अपघटन शुरू हो जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप कैथोड पर हाइड्रोजन उत्पन्न होती है तथा ऋण आवेशित हाइड्रॉक्साइड आयन एल्युमीनियम एनोड की ओर आकर्षित होते हैं । परिपथ में विद्युत आवेश, धनावेशित एल्युमीनियम आयनों को कैथोड की ओर अभिमुख करता है । तथापि एनोड की सतह

पर एल्युमीनियम धनायन हाइड्रॉक्साइड ऋणायनों से संयोजित होकर एल्युमीनियम ऑक्साइड फिल्म का निर्माण करते हैं। यह फिल्म अधिकांशतः सूक्ष्म षड़भुजाकार सेलों (प्रति वर्ग इंच में कई लाख) की बनी होती है। कुछ एल्युमीनियम आयन हाइड्रॉक्साइड आयनों से संयोजन नहीं कर पाते और ये विद्युतअपघट्य में घुल जाते हैं। फिर से यदि विद्युतअपघट्य में सल्फ्यूरिक अम्ल होता है तो कुछ सल्फेट आयन एल्युमीनियम आयनों से संयोजन करके एल्युमीनियम सल्फेट बना लेते हैं।

शुरु में एक उपरोधी महीन परत (thin barrier layer) का निर्माण होता है जिसकी मोटाई प्रयुक्त वोल्टेज के समानुपाती होती है। जैसे ही फिल्म की यह मर्यादित मोटाई प्राप्त हो जाती है, विलेप का अम्ल में घुलना आरंभ हो जाता है। विलेप निर्माण तथा प्रति वर्ग इंच लाखों बिंदुओं पर घुलने के मध्य साम्यावस्था के परिणामस्वरूप विलेप में महीन रंध्र बन जाते हैं जो उपरोधी पर्त द्वारा पृथक रहते हैं। क्योंकि इस प्रक्रिया से वैद्युत क्षेत्र जुड़ा होता है, रंध्र समान दूरी पर बनते हैं। ऑक्साइड फिल्म कुछ-कुछ ग्रेफाइट पेन्सिल के समान होती है जिससे ग्रेफाइट निकाल दिया गया हो। एनोडिक फिल्म में उत्पन्न रंध्र 100 - 200 ऑन्गस्ट्रॉम (ऑ.) व्यास के क्षेत्र में होते हैं तथा उनको घेरने वाली दीवाल की मोटाई लगभग 150 - 300 ऑ. होती है।

एनोडीकरण के उपरांत विलेप की संक्षारण प्रतिरोधिता में सुधार लाने के लिए रंध्ररोधन (sealing) किया जाता है। रंध्ररोधन प्रायः नियंत्रित शुद्धता वाले खौलते हुए अनआयनीकृत जल में किया जाता है। रंध्ररोधन से विलेप में एक रासायनिक बदलाव आता है जिससे विलेप एल्युमीनियम ऑक्साइड से बोहमाइट - स्थायी एल्युमीनियम ऑक्साइड हाइड्रेट में परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन से विलेप में फैलाव आता है जिसके परिणामस्वरूप उसके रंध्र बंद हो जाते हैं।

एनोडीकरण प्रक्रिया की रासायनिक अभिक्रियाओं को निम्नलिखित समीकरणों द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है -

विद्युत अपघटनी अभिक्रिया (आयनीकरण) :

$$H_2O \text{------} > H^+ + OH^-$$

$$H_2SO_4 \text{---------} > 2H^+ + SO_4^{2-}$$

एनोडीकरण अभिक्रिया :

$$Al^0 \text{------} > Al^{3+} + 3e^-$$

$$2Al^0 + 6OH^- \text{-----} > Al_2O_3 + 3H_2O$$

$$2Al^{3+} + 3SO_4^{2-} \text{-------} > Al_2(SO_4)_3$$

कैथोडिक अभिक्रिया :

$$2H^+ + 2e^- \text{-----} > H_2 \uparrow$$

रंध्ररोधी अभिक्रिया :

$$Al_2O_3 + H_2O \text{--------} > Al_2O_3 . H_2O$$

प्राप्त एनोडिक ऑक्साइड फिल्म का रासायनिक संघटन तालिका - 2 में दिया गया है।

तालिका-2 :

एनोडिक ऑक्साइड फिल्म का रासायनिक संघटन

संघटक	भार के अनुसार, %	
	रंध्ररोधन से पूर्व	रंध्ररोधन के उपरांत
Al_2O_3	78.9	61.7
$Al_2O_3 . H_2O$	0.5	17.6
$Al_2(SO_4)_3$	20.2	17.9
H_2O	0.4	2.8

क्रोमिक अम्ल एनोडीकरण - यद्यपि क्रोमिक अम्ल एनोडीकरण का उपयोग, सल्फ्यूरिक अम्ल एनोडीकरण जितना व्यापक नहीं है, तथापि निम्नलिखित विशेषताओं के कारण विमान, अंतरिक्ष तथा रक्षा संबंधी क्षेत्रों में इसका उपयोग निरंतर जारी है।

1. एल्युमीनियम धातु पर क्रोमिक अम्ल तीव्रता से क्रिया नहीं करता। यदि किसी कारण क्रोमिक अम्ल के अंश जोड़ों, गड्ढों अथवा अंधछिद्रों में रह भी जाये तो भी उससे संक्षारण की समस्या उत्पन्न नहीं होती।
2. क्रोमिक अम्ल एनोडीकरण से प्राप्त विलेप, सल्फ्यूरिक अम्ल के समान सुदृढ़ न होकर, नम्य

होते हैं जिसके परिणामस्वरूप अधोस्तर (सबस्ट्रेट) धातु के यांत्रिक गुणों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

3. इस विलेप से वस्तु का विमीय परिवर्तन नगण्य होता है जिससे वस्तु के फटीग (fatigue) गुणों पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता ।

इस प्रकार क्रोमिक अम्ल एनोडीकरण का उपयोग महीन चादरों तथा संकीर्ण विमीय सहिष्णुता वाले घटकों के लिए लाभदायक रहता है । इस विलेप की मोटाई मात्र 1-5 माइक्रॉन तक सीमित है तथापि यह यथेष्ठ संक्षारण प्रतिरोधी गुण प्रदान करता है । किंतु इस प्रक्रम से प्रदूषण संकट तथा अपशिष्ट उपचार संबंधी प्रमुख समस्याएं जुड़ी हुई हैं ।

प्रक्रम : क्रोमिक अम्ल एनोडीकरण विधि का अनुक्रम सल्फ्यूरिक अम्ल प्रक्रम के समान ही है । इसमें एनोडीकरण के लिए प्रायः स्टील टैंक तथा कैथोड के रूप में जंगरोधी इस्पात को प्रयोग में लाया जाता है । औद्योगिक रूप से महत्वपूर्ण निम्नलिखित दो प्रक्रम व्यापक रूप से प्रचलित हैं ।

बेनगोग-स्टूरट प्रक्रम : यह सबसे पहला क्रोमिक अम्ल एनोडीकरण प्रक्रम है जिसे 1923 में पेटेन्ट किया गया था तथा अभी भी उपयोग में लाया जाता है । इस प्रक्रम में 30-50 ग्राम प्रति लीटर क्रोमिक अम्ल को विद्युतअपघट्य के रूप में 40^0 सेल्सियस तापमान पर प्रचालित किया जाता है । प्रक्रम में वोल्टेज नियंत्रण की एक जटिल प्रक्रिया सम्मिलित है - वोल्टेज को पहले 10-15 मिनट में धीरे-धीरे (3-4 वोल्ट प्रति मिनट की दर से) 40 वोल्ट तक बढ़ाया जाता है, 20-30 मिनट तक इसी पर स्थिर रखकर वोल्टेज को पुनः 2 वोल्ट प्रति मिनट की नियंत्रित दर से 50 वोल्ट तक बढ़ाने के उपरांत अंतिम 5 मिनट तक उस पर बनाये रखा जाता है । इस प्रकार संपूर्ण प्रक्रम के संपन्न होने में 40-60 मिनट के कुल समय की आवश्यकता पड़ती है ।

नियमित वोल्टेज प्रक्रम : यद्यपि इस प्रक्रम का विकास बेनगोग-स्टूरट प्रक्रम से बहुत बाद में किया गया किंतु सरलता के कारण इसे व्यापक रूप से उपयोग में लाया जाता है । इस प्रक्रम में 90-100 ग्राम प्रति लीटर क्रोमिक अम्ल को विद्युत अपघट्य के रूप में 50-70° सेल्सियस तापमान पर प्रयुक्त किया जाता है तथा 50 वोल्ट का नियमित वोल्टेज 30-40 मिनट तक प्रवाहित किया जाता है ।

क्रोमिक अम्ल विधि द्वारा प्राप्त एनोडिक विलेप का रंध्ररोधन खौलते हुए अनआयनीकृत जल में 10-15 मिनट तक निमज्जित करके किया जाता है । विलेप की संक्षारण प्रतिरोधिता में सुधार के लिए रंध्ररोधन के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले जल में क्रोमिक अम्ल की अल्प मात्रा (पीएच मान ~ 5.0) मिला दी जाती है ।

क्रोमेट संपरिवर्तन विलेप : क्रोमेट संपरिवर्तन विलेप आधारभूत धातु तथा षटसंयोजक क्रोमियम के मध्य रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप प्राप्त किये जाते हैं । क्रोमेट विलेप दो क्रियाविधियों द्वारा वस्तु को मध्यम प्रकार की संक्षारण संरक्षा प्रदान करता है ; (1) क्रोमियम संश्लिष्ट आर्द्रता तथा वायु के लिए एक निष्क्रिय पर्त के रूप में कार्य करते हुए वस्तु का संक्षारण से बचाव करता है, तथा (2) क्रोमेट फिल्म जब तक जलयोजित रूप में रहती है, जल अवशोषण के गुण बनाये रखती है, जैसे ही इसको कोई खरोंच लगती है या यांत्रिक क्षति पहुंचती है फिल्म पर्याप्त जल का अवशोषण करके फैल जाती है जिससे क्षतिग्रस्त क्षेत्र की स्वतः मरम्मत हो जाती है । क्रोमेट विलेप प्रलेपों तथा अन्य समतुल्य पदार्थों को संक्षारण में सुधार के वास्ते उन्नत आधार भी प्रदान करता है । आधुनिक संश्लिष्ट क्रोमेट विलेप न केवल स्वयं यथेष्ठ संक्षारण संरक्षा प्रदान करते हैं, बल्कि अभियांत्रिक उपयोगों के लिए अपेक्षित क्रियागत गुण भी ।

क्रोमेट संपरिवर्तन विलेप को आरंभ में विद्युतलेपित जिंक पर 'श्वेत जंग' का बनना रोकने तथा प्रलेपों को उन्नत आसंजन मुहैय्या करने के लिए किया गया था । जिंक के साथ सफलता के उपरांत उसी प्रकार का उपचार कैडमियम धातु पर भी किया गया । तत्पश्चात, चांदी, तांबा, बेरिलियम, टिन, एल्युमीनियम, मैग्नीशियम, जिंक की ढली वस्तुओं तथा विद्युतलेपित क्रोमियम आदि पर

विस्तृत वर्ग के क्रोमेट संपरिवर्तन विलेपों का विकास किया गया ।

फिल्म निर्माण की क्रियाविधि : जब किसी धातु को क्रोमीकरण घोल में निमज्जित किया जाता है उसकी सतह अल्पमात्रा में घोल में घुलने लगती है जिससे घोल तथा धातु की सतह के मध्य पीएच मान बढ़ जाता है । इसके परिणामस्वरूप धातु की सतह पर क्रोमियम-धातु के संश्लिष्ट महीन जेल (Gel) का अवक्षेपण हो जाता है । यह अवक्षेप षटसंयोजक तथा त्रिसंयोजक क्रोमियम तथा अधःस्तर धातु का बना होता है । फिल्म निर्माण के समय यह जेल अति नम्य होता है इसलिए विलेपित वस्तु का हस्तन बड़ी सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए । सूखने पर यह विलेप यथेष्ठ कठोरता प्राप्त कर लेता है ।

किसी सामान्य क्रोमीकरण अभिक्रिया को नीचे दिये गये समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है :-

$$2M + Cr^{6+} \text{-------} > M_2(CrO_4)_x + Cr_y(\text{ऋणायन})_3$$

जिंक धातु पर बने एक प्रारूपी क्रोमेट संपरिवर्तन विलेप का रासायनिक विश्लेषण तालिका - 3 में दर्शाया है ।

विलेप में क्रोमेट अंश तथा फिल्म की मोटाई में बढ़ोत्तरी से विलेप के संरक्षी गुणों में सुधार आता है । क्रोमेट की अधिक मात्रा के कारण बहुवर्णाभासी (iri-descent) तथा जैतून-बादामी (Olive-drab) विलेप

तालिका - 3 : क्रोमेट संपरिवर्तन विलेप का रासायनिक विश्लेषण

संघटक	भार के अनुपात में %
Cr^{+6}	8.68
Cr^{+3}	20.22
S (SO_4 के रूप में)	3.27
Zn	2.12
Na	0.32
H_2O	19.30
ऑक्सीजन	शेष

उन्नत संक्षारण प्रतिरोधिता दर्शाते हैं । ये विलेप प्रक्रिया के विभिन्न प्राचलों जैसे तापमान, पीएच, निमज्जन समय, शुष्कन तापमान इत्यादि से प्रभावित होते हैं । अतः उच्च कोटि के विलेप प्राप्त करने के लिए इन पर नियंत्रण आवश्यक होता है ।

संक्षारण रोधिता एवं विलेप भार के आधार पर क्रोमेट विलेपों को तीन वर्गों में रखा जाता है; (i) संक्षारण रोधी, (ii) सामान्य उपयोग में आने वाले विलेप तथा (iii) अलंकारिक उपयोगों के लिए सुस्पष्ट विलेप।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संपरिवर्तन विलेप वस्तुओं के पृष्ठीय परिष्करण में उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं तथा संक्षारण रोकने में भी बहुत उपयोगी हैं ।

❐ ❐ ❐

1. प्रीऑन की खोज : जैव संक्रमण में एक नया सिद्धांत

कुबेर सी. भैंसा
नाभिकीय कृषि एवं जैवतकनीकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

उत्तम स्वास्थ्य शरीर को सुकून पहुंचाता है, परंतु अस्वस्थता शरीर को पीड़ा देती है। शरीर के अस्वस्थ या रोगग्रस्त होने के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे कि विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं में अनियमितता, जीवाणु व विषाणु द्वारा आक्रमण, रासायनिक द्रव्यों का सेवन इत्यादि। इन कारकों में जैव कारक (जीवाणु, विषाणु) व्याधि उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये जैव कारक अपने जीवन को बनाये रखने तथा अपनी प्रतिकृति बनाने के लिए न्यूक्लिक अम्ल (Nucleic Acid) का इस्तेमाल करते हैं। वर्षों के अनुसंधान के बाद यह पता चला कि संक्रमण के लिए न्यूक्लिक अम्ल,- डी. एन. ए. (DNA) तथा आर. एन. ए. (RNA) का होना अत्यंत आवश्यक होता है। आज से पंद्रह साल पहले प्रो. प्रुसिनर ने एक ऐसे संक्रमणकारक का पता लगाया जो केवल प्रोटीन के द्वारा व्याधि संक्रमण कर सकता है। उस समय इस बात पर किसी ने भी विश्वास नहीं किया, क्योंकि ऐसा पूर्व ज्ञात सिद्धांत के संपूर्ण विपरीत था। परंतु आज उसी संक्रमणकारक, प्रीऑन की खोज के लिए प्रो. प्रूसिनर को शरीर क्रिया विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में वर्ष 1997 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके साथ-साथ यह सिद्ध हो गया कि प्रीऑन जैसे कारक केवल प्रोटीन की सहायता से व्याधि संक्रमण कर सकते हैं।

प्रीऑन मनुष्य और अन्य प्राणियों में विभिन्न प्रकार की व्याधियां उत्पन्न कर सकता है (तालिका-1)। सबसे पहले प्रीऑन-व्याधि भेड़ों में देखी गयी जो स्क्रेपी के नाम से जानी जाती है। 1957 में पापुआ न्यू (दक्षिणी अमरीका) में बसी हुई एक जनजाति के लोगों में कुरु व्याधि का पता चला। वर्ष 1985-1997 के दौरान

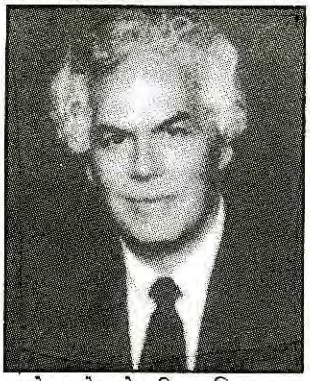

प्रो. स्टेनले बी. प्रूसिनर

प्रो. स्टेनले बी. प्रूसिनर का जन्म 28 मई, 1942 को डेस मोईनेस (ईओवा), अमरीका में हुआ। उन्होंने स्नातक तथा एम. डी. उपाधियां फिलाडेल्फिया स्थित पेनसिलवानिया विश्वविद्यालय से प्राप्त की और 1969 में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय से मेडिसिन में इंटर्नशिप की तथा उसी विश्वविद्यालय में 1972-74 के दौरान न्यूरोलॉजी में एक रेजीडेन्ट के रूप में और 1974 से 1980 तक एक सहायक प्राध्यापक के रूप में काम किया। वर्ष 1980-88 के दौरान विषाणु विज्ञान (Virology) तथा स्नायु विज्ञान (Neurology) में विभिन्न पदों पर उन्होंने अपना दायित्व निभाया। वर्ष 1991 में एल्जाइमर व्याधि के अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिए उनको पोटामकिन पुरस्कार प्राप्त हुआ। उसके बाद 1996 तक उन्हें बहुत सारे पुरस्कार प्राप्त हुए। इनमें क्रिस्टोफर कोलंबस कुइन्सेनटिनियल डिस्कवरी अवार्ड, डिक्सन अवार्ड, दाना अवार्ड, अल्बर्ट लस्कर अवार्ड, वोल्फ पुरस्कार, केइओ इन्टरनेशनल अवार्ड आदि प्रमुख हैं।

प्रो. प्रूसिनर आजकल कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के 'स्कूल ऑफ मेडिसिन' में प्रीऑन के क्षेत्र में अपना अनुसंधान कार्य कर रहे हैं।

तालिका-1 :
विभिन्न प्रकार की प्रीऑन व्याधियाँ

व्याधियाँ	जीव
कुरु	
क्रुज़फेल्ट-जैकब डिज़ीज (CJD)	मनुष्य
जेर्स्टफेल्ट स्ट्रोलर शिन्कर डिजीज़ (GSS)	
फेटल फेमिलियल इन्सोमनिया (FFI)	
स्क्रेपी	भेड़
बोवाइन स्पोन्जीफॉर्म एनसेफैलोपेथी	गाय, भैंस
ट्रॉन्समिसिबिल मिंक एनसेफैलोपेथी	मिंक
क्रॉनिक वास्टिंग डिज़ीज	लंबकर्णी मृग, एल्क
फेलाइन स्पोन्जीफॉर्म एनसेफैलोपैथी	बिल्ली
एकज़ाटिक अनगुलेट एनसेफैलोपैथी	अफ्रीकी मृग

ब्रिटेन में हुए मैडकाऊ रोग के बारे में सब लोग भली भांति जानते हैं। यह व्याधि मनुष्य और घरेलू पशुओं के अलावा मृग तथा एल्क (elk) जैसे जंगली जानवरों में भी दिखाई देती है। इस व्याधि से पीड़ित प्राणी के मस्तिष्क को सबसे ज्यादा क्षति पहुंचती है। परिणाम स्वरुप प्राणी अपना समन्वय खो देता है, यहां तक कि ठीक से खड़ा भी नहीं हो सकता और फिर उसके जीवन का अंत होना निश्चित हो जाता है।

1972 में प्रो. प्रूसिनर जब कैलीफोर्निया स्कूल ऑफ मेडिसिन में एक डॉक्टर के रुप में काम कर रहे थे, तब क्रुज़फेल्ट-जैकब डिज़ीज (सी. जे. डी.) से पीड़ित एक मरीज की मृत्यु हो गयी। इस घटना की वजह से उनका ध्यान संपूर्ण रुप से उस जानलेवा बीमारी पर केंद्रित हो गया। इस बीमारी के बारे में पर्याप्त अध्ययन करने के बाद 1974 में वे उसकी जड़ को ढूंढ़ निकालने की कोशिश में जुट गये। स्क्रेपी - संक्रमित मस्तिष्क के निष्कर्ष में से विशुद्ध संक्रमणकारी पदार्थ बनाना बहुत मुश्किल काम था। परंतु 1982 तक प्रो. प्रूसिनर और उनके सहयोगी यह काम पूरा करने में सफल हो गये। प्रश्न यह था कि इस संक्रमणकारी पदार्थ की संरचना क्या है ? इसका उत्तर खोजने के लिए उन्होंने बहुत सारे परीक्षण किये (तालिका-2)। उससे यह पता चला कि प्रोटीन को क्षति पहुंचाने वाले कारक, जैसे कि प्रोटिनेस, एस. डी. एस. (SDS), फिनॉल (phenol) तथा डी.ई.पी. (DEP) आदि, उस संक्रमणकारी पदार्थ की संक्रमण करने की क्षमता समाप्त कर देते हैं। जबकि न्यूक्लिक अम्ल को नष्ट करने वाले कारकों का संक्रमण क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं होता है। इससे यह साबित होता है कि संक्रमण करने की क्षमता न्यूक्लिक अम्ल पर नहीं बल्कि प्रोटीन पर निर्भर करती है। और स्क्रेपी तथा सी. जे. डी. जैसी व्याधियां उत्पन्न करने वाले कारक प्रधानतः प्रोटीन होते हैं। इन कारकों को एक स्वतंत्र श्रेणी का स्थान देते हुए प्रो. प्रूसिनर ने उसका नाम "प्रीऑन" रखा।

कुछ समय के बाद यह पता चला कि स्क्रेपी प्रीऑनों में एक प्रोटीन है जो "प्रीऑन प्रोटीन" के नाम से जानी जाती है। परंतु इस प्रोटीन के बनने का निर्देश (Instruction) कहां से मिलता है ? 1984 में पी. आर. पी. अणु को शेष पंद्रह आमीनो एसिड का क्रम पहचानने के बाद 'मॉलिक्यूलर प्रोब' बनाया गया। उस मॉलिक्यूलर प्रोब की सहायता से यह देखने को मिला कि कोशिका स्थित गुणसूत्र में पी.आर.पी. जीन होता है। यह जीन मनुष्य, चूहा, हैमस्टर तथा अन्य प्राणियों के गुणसूत्र में पाया जाता है। पी. आर. पी. जीन से निर्देश मिलने के उपरांत कोशिका पी. आर. पी.-प्रोटीन बनाती है। यह प्रोटीन कोशिका स्थित प्रोटिएज (protease) द्वारा नष्ट हो जाती है। परंतु स्क्रेपी-संक्रमित मस्तिष्क से मिला प्रोटीन प्रोटिएज प्रतिरोधक होता है। इससे यह पता चलता है कि प्रोटिएज प्रतिरोधक पी. आर. पी., स्वाभाविक पी. आर. पी. का एक अन्य रुप है। अब स्वाभाविक पी. आर. पी. को "सेल्युलर पी. आर. पी." तथा प्रोटिएज प्रतिरोधक पी. आर. पी. को "स्क्रेपी पी. आर. पी." के नाम से जाना जाता है। इन दोनों प्रोटीनों की विशेषताओं को तालिका-2 में दर्शाया गया है।

संरचनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो सेल्यूलर और स्क्रेपी पी.आर.पी. में मुख्य अंतर यह है कि सेल्यूलर पी. आर. पी. में ज्यादा अल्फा हेलिक्स (α-helix) रहता है जबकि स्क्रेपी पी. आर. पी. में बीटा-शीट ज्यादा होती है (बीटा शीट मस्तिष्क के अंदर एमिलाएड (Amyloid) बनाने में मदद करती है।)। माना जाता है कि स्क्रेपी

तालिका-2 : स्क्रेपी-संक्रमित मस्तिष्क के निष्कर्ष के साथ अभिक्रिया और प्रीऑन पर प्रभाव

उपचार	न्यूक्लिक अम्ल पर प्रभाव	प्रोटीनों पर प्रभाव	प्रीऑनों पर प्रभाव
प्रोटिएस (PROTEASE)	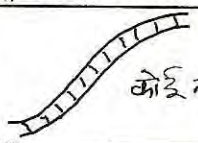		संक्रमणीयता नहीं रहती (Loss of Infectivity)
एस डी एस (S D S)	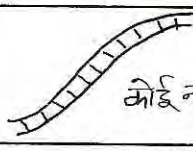	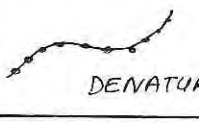	संक्रमणीयता नहीं रहती (Loss of Infectivity)
फीनॉल (PHENOL)	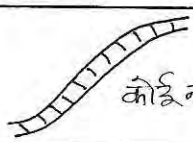		संक्रमणीयता नहीं रहती (Loss of Infectivity)
न्यूक्लिएस (NUCLEASE)	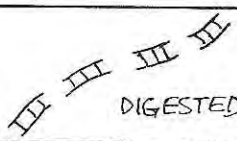	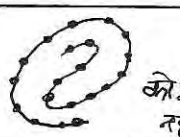	संक्रमणीयता रहती है (Remain Infective)
पराबैंगनी विकिरण (UV - RADIATION)	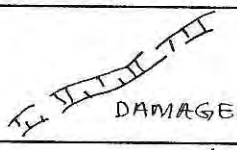		संक्रमणीयता रहती है (Remain Infective)
ज़िंक ऑयन (ZINC IONS)		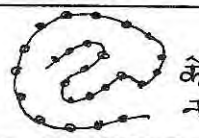	संक्रमणीयता रहती है (Remain Infective)
सोरेलिन (PSORALEN) (Photoproducts)	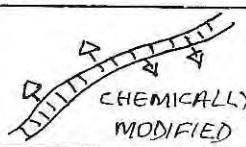	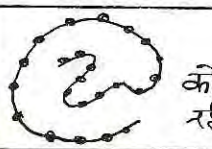	संक्रमणीयता रहती है (Remain Infective)
हाइड्रॉक्सिलअमीन (HYDROXYLAMINE)	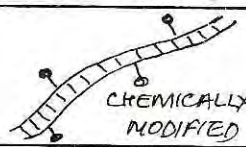	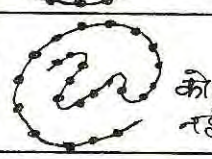	संक्रमणीयता रहती है (Remain Infective)
डाइइथाइल पाइरोकॉर्बोनेट (DIETHYL PYROCARBONATE)	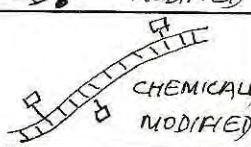	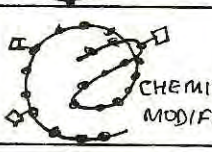	संक्रमणीयता नहीं रहती (Loss of Infectivity)
हाइड्रॉक्सिलअमीन (HYDROXYLAMINE)	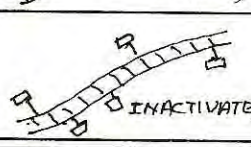	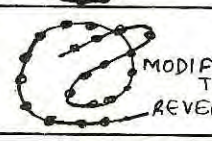	संक्रमणीयता लौट आती है (Infectivity Restored)

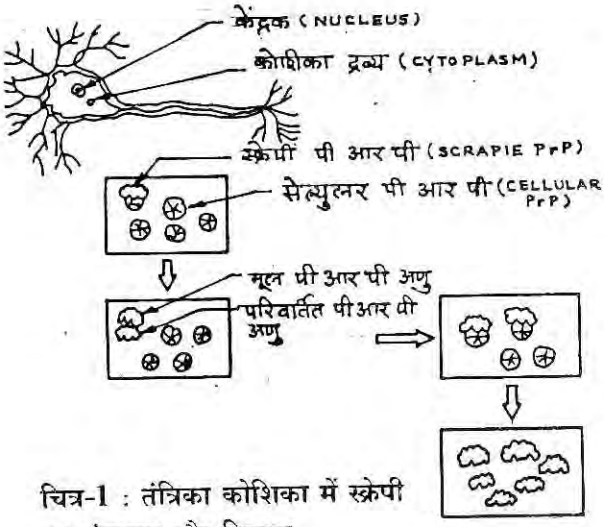

चित्र-1 : तंत्रिका कोशिका में स्क्रेपी का संक्रमण और विस्तार

पी. आर. पी., अल्फा-हेलिकल पी. आर. पी. को बीटा शीट आकृति में बदल सकता है। इस संदर्भ में मारिया गैसेट तथा जैफ गूएन द्वारा किया गया परीक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक तरफ मारिआ गैसेट सेल्युलर पी. आर. पी. को अल्फाहेलिक्स जैसे सिन्थेटिक पेप्टाइडस को बीटा-शीट में परिवर्तित करने में सफल रहे, तो दूसरी तरफ गूएन ने देखा कि परिवर्तित बीटा-शीट पेप्टाइडस अल्फा हेलिक्स को बीटा-शीट में बदल सकता है। हाल ही में काघे और लैन्सबरी ने एक टेस्ट ट्यूब में सेल्युलर और स्क्रेपी पी. आर. पी. का मिश्रण बनाकर देखा कि सभी सेल्यूलर पी. आर. पी. स्क्रेपी पी. आर. पी. में परिवर्तित हो गये। इन सब परीक्षणों के परिणामों के आधार पर 'स्क्रेपी पी. आर. पी. का मस्तिष्क में कैसे संक्रमण हो सकता है' इसका एक प्रतिरूप चित्र-1 में दर्शाया गया है।

शरीर में स्क्रेपी पी. आर. पी. बनने के तीन कारण हो सकते हैं, यथा-बाहर से अन्य स्क्रेपी के द्वारा संक्रमण, पी. आर. पी. जीन में परिवर्तन तथा सेल्यूलर पी. आर. पी. का खुद ब खुद स्क्रेपी में बदल जाना। चित्र-1 में दर्शाया गया है कि स्क्रेपी पी. आर. पी. सेल्युलर पी. आर. पी. के संपर्क में आते ही उसको स्क्रेपी में बदल देता है। इस तरह से स्क्रेपी के संक्रमण के साथ-साथ

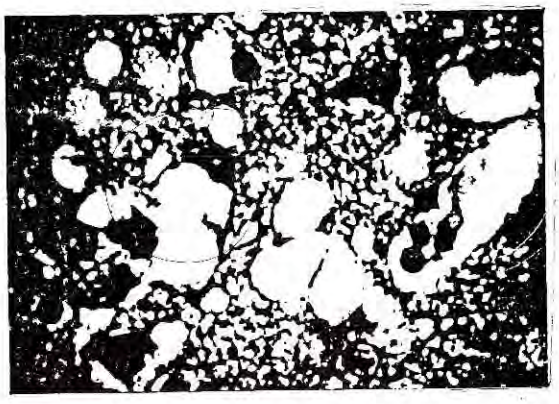

चित्र-2 : कुरु संक्रमित मस्तिष्क में छिद्र का प्रगटन

तालिका-3 : "पी.आर.पी.एस.सी. और पी. आर.पी.सी. की विशेषताओं में अंतर"

विशेषताएं	पी.आर.पी.एस.सी.	पी.आर. पी.सी.
प्रोटिएस प्रतिरोध	ज्यादा है	नहीं है
पानी में विलेयता	अविलेय	विलेय
एनटिजेनेसिटी	कम	ज्यादा
फॉस्फोलाइपेज़-सी	परतिरोधक	संवेदनशील
एमिलॉइड	बनता है	नहीं बनता हैं

एमिलॉएड बनना आरंभ हो जाता है और धीरे - धीरे मस्तिष्क के अंदर छेद दिखने लगते हैं (चित्र-2)। प्रभावित भाग स्पंज जैसा दिखता है, इसलिए प्रीऑन व्याधि का दूसरा नाम स्पांजिफॉर्म एनसेफैलोपैथी (spongiform encephalopathy) है।

प्रीऑन व्याधि केवल संक्रामक ही नहीं बल्कि अनुवांशिक और कदाचनिक (sporadic) भी हो सकती है। CJD संक्रामक या कदाचनिक होती है परंतु GSS और FFI जैसी व्याधियां अनुवांशिक होती हैं। ये व्याधियां मध्यम से अधिक आयुवर्ग के लोगों में दिखाई देती हैं।

एल्जाइमर व्याधि (Alzheimer's disease), पार्किन्सन व्याधि (Parkinson's disease) और एमयोट्रापिक लेटरल स्कलैरोसिस (Amyotrophic lat-

eral Sclerosis) जैसी व्याधियों के लक्षण स्क्रेपी जैसी बीमारियों के लक्षणों से काफी मिलते-जुलते हैं। तंत्रिका-कोशिका (neuron) का नष्ट होना, प्रोटीन एकत्रित होकर प्लाक अर्थात छेद बनना और तंत्रिका कोशिका के विकास के लिए पोषण देने वाली ग्लायल कोशिकाओं (glial cells) के आकार में वृद्धि होना जैसे लक्षण आमतौर पर इन सभी बीमारियों में पाये जाते हैं।

प्रो. प्रूसिनर के द्वारा प्रीऑन की खोज से जैव संक्रमण में एक सैद्धांतिक परिवर्तन आया है। प्रतिरूप बनने की प्रक्रिया केवल न्यूक्लिक अम्ल पर केंद्रित न होकर अब प्रोटीन के साथ भी जोड़ी जायेगी। प्रोटीन के द्वारा व्याधि का संक्रमण, आने वाले समय में अन्य बीमारियों को समझने में भरपूर मदद करेगा। आशा है कि प्रो. प्रूसिनर की यह महत्वपूर्ण खोज जैव अनुसंधान के क्षेत्र में नयी राह दिखायेगी।

❐❐❐

विज्ञान कविता

भूवैज्ञानिक की जीवनशैली

शैलों का विस्तृत सर्वेक्षण कर
गढ़ता है वह उसकी कहानी
उसका शिलावीक्षण एवं विश्लेषण कर
खोजता है खनिज, तेल और पानी।
शैल संरचना के बल पर वह
उसका रूपांतरण सुलझा पाता है
खनिजों का भंडार खोज कर
विकास की गति बढ़ा पाता है।
इस हेतु वह नयी डगर
नित पैदल तय करता,
पर्वत, घाटी में विचरण करता
घने जंगलों में घूमा करता।
तरह-तरह के जंगली जानवरों
तथा कभी सांपों से भी बचना पड़ता
कई जगह वर्जित होने पर भी
विवश उसे जाना पड़ता।
लथपथ होती पसीने से काया
तेज धूप में खून उबलने लगता।
सर्दियों के दिनों में रात बिताना
बहुत ही मुश्किल हो जाता।
कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोप से
बेचारे का तंबू भी उड़ जाता।
निर्जन में प्रकृति की मार सहकर
भाग्य भी उस पर तरस खाता।
आज भी वह एक में अनेक है
सब काम खुद ही करता है,
नयी-नयी विपदाओं से लड़कर
वह सतत आगे बढ़ता रहता है।

विज्ञान पत्र पत्रिकाएं न मिलने से
नयी जानकारी से वह वंचित रहता है
आवश्यक पत्र भी मिलते विलंब से
जब काम हाथ से निकल जाता।
परिचित अपना नहीं मिलता कोई
बात करने को भी तरस जाता,
मौन तपस्वी भी फीका पड़ जाता
पर वह उससे आगे बढ़ जाता।
एक लंबे समय तक वह
परिवार से दूर-दूर रहता,
यौवन में भी पत्नी से वह
अधिक समय तक कटा रहता।
सिर्फ पैसा भेजता है घर में
पूरी जिम्मेदारी गृहिणी पर होती
बच्चे पितृ स्नेह से वंचित रहते
देखभाल मां के बल पर ही होती।
अजीब स्थिति उसकी हो जाती,
बहुत दिनों पर जब घर जाता।
चिल्ला कर "कोई अंकल आये हैं,"
बच्चा मां को बुला लाता।
घर जाने पर बीवी बच्चे मिलकर
उसके अभाव पर क्रंदन करते,
उसकी नौकरी का बुरी तरह
वे सब मिलकर मंथन करते।
उसके सच्चे संघर्ष के बल पर ही
विकास की महती नीव पड़ती है,
आधुनिकता की एक लंबी कहानी
उसी के कर्म पर गढ़ती है।

डॉ. अखिलेश्वर तिवारी, 60, शांतिनिकेतन कॉलोनी, पो. खामला, नागपुर - 440 025

2. जीवित कोशिकाओं में रासायनिक ईंधन : ए. टी. पी. के उत्पादन एवं विखंडन का रहस्य

डॉ. के. पी. मिश्र
विकिरण जीवविज्ञान और जीव रसायन प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

हमारे शरीर की कोशिकाएं प्रतिदिन कई किलोग्राम रासायनिक ईंधन, एडेनोसीन ट्राइफॉस्फेट (ATP), का संश्लेषण करती हैं जिससे अनेक कोशिकीय प्रक्रियाएं संचालित होती हैं। वर्ष 1997 का रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार अमरीका के लॉस एन्जेल्स स्थित कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो. पॉल बायर, ब्रिटेन के मेडिकल रिसर्च कॉन्सिल द्वारा संचालित मॉलिक्यूलर बॉयोलॉजी लेबोरेटरी के डॉ. जॉन वाकर और डेनमार्क के आरहस विश्वविद्यालय के डॉ. जेन्स स्कोयू को साझेदारी में दिया गया है। इन्हें यह पुरस्कार उन कोशिका-झिल्लियों में स्थित एन्जाइमों की खोज तथा उनके क्रिया-विधि अध्ययन पर दिया गया है जो खाद्य पदार्थों से प्राप्त रासायनिक ऊर्जा को एडेनोसीन ट्राइफॉस्फेट में बदलती हैं और इसके विखंडन से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग करके आयनों का कोशिका झिल्ली के आर-पार पारगमन संभव करती हैं।

इसके पहले कि हम इन वैज्ञानिकों के अनुसंधान कार्य की विस्तृत जानकारी हासिल करें, यह समझ लेना आवश्यक है कि संबंधित एन्जाइम मुख्यतः कोशिका झिल्ली में ही पाये जाते हैं। इस तरह इस खोज का गहरा संबंध कोशिका झिल्ली विज्ञान से है और सौभाग्य से हमारी प्रयोगशाला के अनुसंधान का लक्ष्य भी इसी विज्ञान के विविध पहलुओं से संबंधित है। एक अन्य रोचक बात यह है कि पुरस्कार से सम्मानित तीनों वैज्ञानिक मूल रूप से जीव विज्ञान में शोधकार्य करते हैं। यद्यपि यह खोज इन वैज्ञानिकों के कई दशकों के अनुसंधान की देन है और इस शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी गयी है किंतु कुछ वैज्ञानिकों ने नोबेल समिति के निर्णय पर इसलिए आश्चर्य व्यक्त किया है कि ए. टी. पी. सिंथेज की संरचना एवं क्रिया विधि से जुड़े कई

प्रो. पॉल डी. बायर

आपका जन्म अमरीका के प्रोवो, ऊटा शहर में 1918 में हुआ। इन्हें जैविक-रसायन में डॉक्टरेट की उपाधि वर्ष 1943 में विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई। 1962 से 1989 तक रसायन और जैव-रसायन विभाग, कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, लॉस एंजेलीस में प्रोफेसर तथा 1965 से 1983 तक मॉलीक्यूलर बायोलॉजी इंस्टीट्यूट, लॉस एंजेलीस के निदेशक रहे। वर्ष 1990 से कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में विशिष्ट प्रोफेसर हैं। प्रो. बायर राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के सदस्य 1970 से हो हैं। उन्हें वर्ष 1974 स्टॉकहोम विश्वविद्यालय से मानद डॉक्टरेट की डिग्री दी गयी तथा 1989 में अमेरिकन बायोकैमिस्ट्री और मॉलीक्यूलर बायोलॉजी का 'रोज पुरस्कार' मिला।

प्रश्नों के उत्तर अभी तक नहीं मिल सके हैं। हालांकि शोधकार्य तेजी से चल रहा है।

इस शताब्दी के मध्य तक यह ज्ञात हो गया था कि कोशिकाएं अपने अंदर और बाहर आयनों की असमान सांद्रता कायम बनाये रखती हैं। इन्हीं वर्षों में यह भी पता चल गया था कि सूक्ष्मतम जीवाणुओं से लेकर पूर्ण विकसित मानव कोशिकाओं तक सभी सजीवों में एक

डॉ. जान ई. वाकर

आपका जन्म ग्रेट ब्रिटेन के हैलीफैक्स शहर में 1941 में हुआ। आपने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से एम. ए. और पीएच.डी. डिग्रियाँ प्राप्त कीं। वर्ष 1982 से डॉ. वाकर कैंब्रिज में मेडिकल रिसर्च कॉन्सिल के मॉलीक्यूलर बॉयोलॉजी लैबोरेटरी में वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं। लंदन की रॉयल सोसायटी में उनका चुनाव वर्ष 1995 में हुआ।

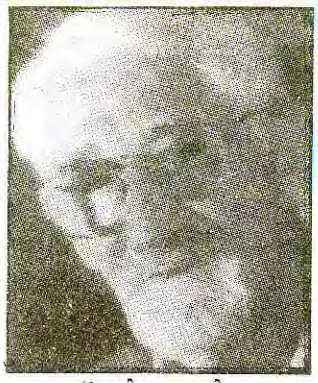

डॉ. जेन्स स्कोयू

आपका जन्म डेनमार्क में 1918 में हुआ। आपने चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन कोपेन हैगन विश्वविद्यालय में किया। वर्ष 1954 में इन्हें डॉक्टरेट की डिग्री आरहस विश्वविद्यालय से मिली और इसी विश्वविद्यालय में 1963 में शरीर विज्ञान के प्रोफेसर और वर्ष 1977 में जैव-भौतिकी विभाग के प्रोफेसर बने। आप डैनिश विज्ञान अकादमी के सदस्य हैं।

सूक्ष्म अणु ए.टी.पी. बनता है जो रासायनिक ऊर्जा को संग्रहीत रखता है। इस खोज के लिए डॉ. फ्रिट्ज लिपमैन को 1953 में नोबेल पुरस्कार मिला था। स्पष्ट है कि कई मूल प्रश्नों का हल पाना शेष था जिनमें से अधिकांश रहस्यों का खुलासा इस वर्ष पुरस्कृत शोधकार्य से हुआ है।

ए. टी. पी सिंथेज : एक विशिष्ट आण्विक मशीन :

डॉ. बायर ने अपने शोधों में इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ना शुरू किया कि कोशिका झिल्ली के दोनों ओर आयनों की असमान सांद्रता का उपयोग कैसे कम ऊर्जा वाले एडेनोसीन डाइफॉस्फेट (ADP) से अधिक ऊर्जा वाले एडेनीसीन ट्राइफॉस्फेट के संश्लेषण में होता है।

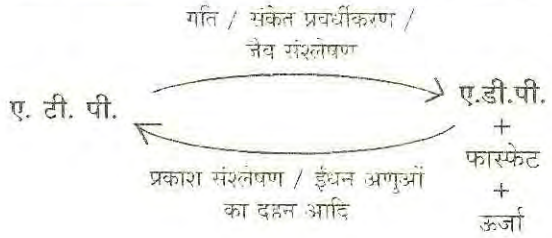

इस अध्ययन का आधार यह था कि ब्रिटेन के डॉ. पीटर मिचेल ने वर्ष 1960 के आसपास यह सिद्ध किया था कि खाद्य पदार्थों के चयापचय फलस्वरूप कोशिकाओं के माइटोकॉन्ड्रिया झिल्ली के आर पार हाइड्रोजन आयनों की सांद्रता असमान हो जाती है। उनके इस शोध कार्य पर वर्ष 1978 में उन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया था।

डॉ. बायर की बंध-परिवर्तन प्रक्रिया :

डॉ. मिचेल ने प्रस्ताव रखा था कि हाइड्रोजन आयनों की असामनता का उपयोग करके कोशिकाएं एन्जाइम की सहायता से ए. टी. पी. अणु का संश्लेषण करती हैं। किंतु झिल्ली में पाये जाने वाले ए. टी. पी. सिंथेज की कार्यविधि तथा आयनों में मौजूद ऊर्जा से ए. टी. पी. अणु के निर्माण विधि का भेद कई वर्षों तक न खुल पाया। डॉ. बायर ने अपने अध्ययन में यह पता लगाने का प्रत्यन किया कि हाइड्रोजन आयनों से उपलब्ध ऊर्जा का उपयोग ए. टी. पी. सिंथेज के माध्यम से ए. टी. पी. अणु उत्पादन में कैसे होता है। कई वर्षों तक समस्थानिक तकनीक द्वारा यह अध्ययन करते रहे कि

किस प्रकार कोशिकाओं में रासायनिक ऊर्जा से ए. टी. पी. अणु बनता है जो अपने में ऊर्जा संग्रहीत रखता है। उनके प्रयास से ए. टी. पी. सिंथेज के बारे में कई महत्त्वपूर्ण जानकारियां मिलीं। सातवें व आठवें दशक के दौरान बायर ने यह पता लगाया कि सिंथेज में अनेक प्रोटीन होते हैं जिनका दो भागों में वर्गीकरण किया जा सकता है। एक हिस्सा वह है जिसे ऐतिहासिक कारणों से F_0 कहा गया और यह भाग माइटोकॉन्ड्रियल झिल्ली में घुसा हुआ रहता है और दूसरा भाग वह है जो झिल्ली के बाहर की ओर रहता है। इस F_1 कहा गया और इसमें ही ए. टी. पी. बंध और संश्लेषण की क्षमता होती है। यह भी पाया गया कि F_1 की पांच उप इकाइयाँ हैं, अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा और एप्सिलान। बायर और उनके सहकर्मियों ने दिखलाया कि इस एन्जाइम की कार्यविधि अन्य सभी एन्जाइमों से बिल्कुल भिन्न है। याद रहे कि साधारण तौर पर सभी एन्जाइमों में किसी सबस्ट्रेट का बंधन और उत्पाद का निकलना साथ ही होता है और इस उत्प्रेरण क्रिया में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत ए. टी. पी. सिंथेज में डॉ. बायर ने प्रस्ताव रखा कि ए. डी. पी. और फॉस्फेट अणु एन्जाइम सिंथेज में F_1 पर जुड़ते हैं और ए. टी. पी. अणु उत्पादित होकर निकल जाता है। इस तरह ऊर्जा रासायनिक अवयवों के संश्लेषण में नहीं बल्कि एन्जाइम इसे ए. डी. पी. और फास्फेट को अपने से बंधने में इस्तेमाल करती है और ए. टी. पी. अणु के बनने के शीघ्र बाद ही उसे निकाल दिया जाता है। इसे बायर ने 'बंध-परिवर्तन प्रक्रिया' कहा। वास्तव में यह प्रस्ताव एक सुझाव था और इसके पक्ष और विपक्ष में कई वर्षों तक विवाद चलता रहा। वर्ष 1970 के आस पास यह लगभग सत्यापित हो गया कि ए.टी.पी. सिंथेज तीन मुख्य प्रोटीनों से बना है : पहियानुमा संरचना जो माइटोकॉन्ड्रिया झिल्ली में है, पहिये के केंद्र से जुड़ी एक प्रोटीन जो एक छड़ की तरह है और जिसके दूसरे छोर से एक सिलिंडरनुमा संरचना जुड़ी रहता है (चित्र-1)। अपने अध्ययन के आधार पर डॉ. बायर ने प्रस्ताव रखा कि अल्फा और बीटा उपइकाइयाँ सिलिंडर बनाती हैं और गामा इकाइ छड़ का कार्य करती है। समनुरूपण प्रक्रिया से सिंथेज

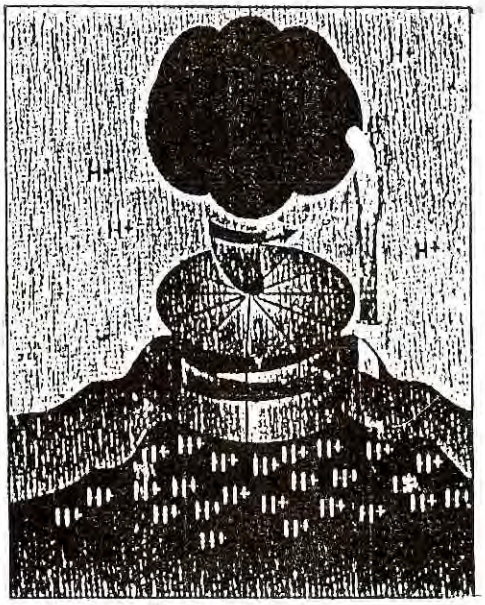

चित्र-1 : ए. टी. पी. सिंथेज का कोशिका झिल्ली और उसके बाहर का ढांचा

के उत्प्रेरण स्थल परिवर्तित होते हैं जिससे ए. टी. पी. का बंधन और निकलना नियंत्रित होता है।

डॉ. बायर ने एक प्रस्ताव यह भी रखा कि हाइड्रोजन आयनों की कोशिका-झिल्ली के बाहर प्रवाह स्वरूप सिलिंडर से जुड़ी गामा प्रोटीन घूम जाती है और इससे अल्फा तथा बीटा प्रोटीनों में अनुरूपण हो जाता है। इस तरह पहले प्रतिक्रियक जुड़ते हैं और ए.टी.पी. बनाते हैं और परिवर्तन की दूसरी स्थिति में ए.टी.पी. छूट कर निकल जाता है (चित्र-2)। यह प्रक्रिया ठीक उसी तरह होती है जैसे पानी की धार गिरने से कोई चक्का घूमने लग जाता है। डॉ. बायर ने इस एन्जाइम को आण्विक मशीन कहा है।

ए. टी. पी. सिंथेज संरचना का सत्यापन :

डॉ. बायर के प्रस्ताव उनके जैव रासायनिक अध्ययनों पर आधारित थे। निश्चय ही उनके सुझावों से अनुसंधान में एक नयी दिशा आरंभ हुई और इसकी भरपूर सराहना भी की गयी किंतु प्रत्यक्ष प्रमाण स्पष्ट रूप से सत्यापित

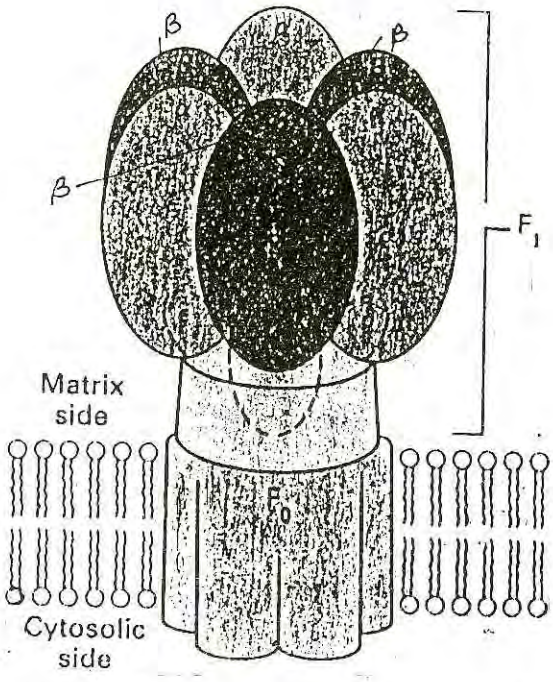

चित्र-2 : आणविक मशीन - हाइड्रोजन आयनों की कोशिका झिल्ली के दूसरी ओर प्रवाह से ए. टी. पी. सिंथेज क पहियानुमा ढांचा तथा उससे लगी छड़ घूम जाती है। F_1 में उत्प्रेरक स्थल में परिवर्तन हो जाता है और ए. टी. पी. बाहर निकल जाता है।

नहीं हो सके। वर्ष 1980 में डॉ. वाकर ने ए. टी. पी. सिंथेज की संरचना तथा कार्यविधि पर एक्सरे क्रिस्टलोग्राफी तकनीकी की सहायता से शोध आरंभ किया और कई प्रस्तावित संरचनाओं का ठोस एवं प्रत्यक्ष प्रमाण दिया। उन्होंने सिंथेज के सभी अमीनो अम्लों का क्रम निश्चित करने के पश्चात F_1 हिस्से की परमाणु स्तर पर विघटित संरचना का वर्ष 1994 में विस्तार से पता लगाया। इन अध्ययनों से डॉ. बायर के अधिकांश प्रस्तावों की पुष्टि हो सकी। वास्तव में प्रो. बायर के कार्यों का ठोस आधार डॉ. वाकर ने ही प्रदान किया।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि वर्ष 1997 में ही जापान के टोकियो प्रौद्योगिकी संस्थान के प्रो. मासासूके योशिदा ने डॉ. बायर के प्रस्तावित हाइड्रोजन आयनों से संचालित F_1 भाग के घुमाव का सुचित्रित (graphical) सत्यापन प्रस्तुत कर दिया। यहाँ इस तथ्य का उल्लेख भी प्रासंगिक है कि डॉ. वाकर मॉलीक्यूलर बायोलोजी प्रयोगशाला के दसवें नोबेल पुरस्कार के हकदार बने। किसी एक ही प्रयोगशाला में इतने नोबेल वैज्ञानिकों का होना अपने में एक प्रतिष्ठा का विषय है (तालिका देखें)। ऐसा कहा जाता है कि सजीव चित्रण का प्रदर्शन नोबेल समिति के निर्णय पर गहरा असर किया है।

स्मरण रहे कि जहाँ एक ओर ए. टी. पी. सिंथेज के F_1 भाग के संरचना एवं कार्य विधि की जानकारी पाने में अभूतपूर्व सफलता मिली है वहीं पर F_0 हिस्से की कार्य विधि तथा बनावट अभी भी एक जटिल गुत्थी बनी हुई है। यह सच है कि लगातार नये तथ्य सामने आ रहे हैं किंतु यह प्रश्न अनुत्तरित है की कैसे F_0 हाइड्रोजन आयनों को प्रवाह कि इजाजत देता है।

सोडियम पोटेशियम आयन पंप – प्रो. स्कोयू की खोज :

जैसा कि ऊपर जिक्र किया गया है वर्ष 1950 के आस पास के अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ था कि कोशिका झिल्ली में कई एन्जाइम पंप की तरह काम करते हैं जिससे आयनों की असमान सांद्रता बनी रहती है और उसके माध्यम से ही विद्युतीय संकेत संचारित होते हैं। अपने अध्ययन में नोबेल पुरस्कार के संयुक्त विजेता प्रो. स्कोयू ने एक ऐसे पंप की खोज की जो ए.टी.पी. का उपयोग करके आयनों का परिवहन संभव करता है। यह विज्ञान जगत में आण्विक पंप की पहली खोज है। प्रो. स्कोयू ने केकड़े की तंत्रिकाओं का विश्लेषण किया और 1957 में यह दिखाया कि सोडियम-पोटेशियम ए.टी.पीएज (Na^+-K^+ATPase) कोशिका झिल्ली में मौजूद एक ऐसा एन्जाइम है जो ए.टी.पी. के विखंडन से ऊर्जा ले कर उसका उपयोग झिल्ली के बाहर पदार्थों के परिवहन के लिए करता है। ऐसा अनुमान है कि आराम की दिशा में हमारे शरीर में निर्मित ए.टी.पी. की लगभग एक तिहाई मात्रा ए.टी.पीएज उपयोग करता है। यह एन्जाइम दो उप इकाइयों का बना होता है जो तीन सोडियम आयनों को कोशिका के बाहर भेजता है तो दो पोटेशियम

नोबेल पुरस्कार विजेताओं की प्रयोगशाला

मॉलीक्यूलर बॉयोलॉजी प्रयोगशाला (LMB), ब्रिटेन

1958	फ्रेड सेंगर (रसायनिकी)
1962	जॉन केंड्रू (रसायनिकी)
1962	मैक्स पेरूत्ज (रसायनिकी)
1962	फ्रांसिस क्रिक (चिकित्सा विज्ञान)
1962	जेम्स वाटसन (चिकित्सा विज्ञान)
1980	फ्रेड सेंगर (चिकित्सा विज्ञान)
1982	आरन क्लूग (रसायनिकी)
1984	जॉर्जेस कोहलर (चिकित्सा विज्ञान)
1984	सीजर माइल्स्टेन (चिकित्सा विज्ञान)
1997	जॉन वाकर (रसायनिकी)

डॉ. सेंगर का पहला पुरस्कार इस प्रयोगशाला में आने से पूर्व और वाटसन और कोहलर का इस प्रयोगशाला को छोड़ने के बाद प्राप्त हुआ।

आयनों को अंदर लेता है। इस कार्य में ए.टी.पी. के एक अणु की ऊर्जा खर्च होती है। इस प्रकार सोडियम पोटेशियम ए.टी.पीएज एक ऐसे पंप की तरह कार्य करता है जो ए.टी.पी. की सहायता से जीवित कोशिकाओं में सोडियम और पोटेशियम के संतुलन को बनाये रखता है। स्वीडिश अकादमी के अनुसार प्रो. स्कोयू के आयन पंप की खोज अनोखी है और इससे कोशिकाओं के एक मौलिक गुण का खुलासा हुआ है।

इस खोज के पश्चात अन्य कई कोशिका झिल्लियों में कार्यरत आयन पंपों की जानकारी हुई है। अधिकांश आयन पंपों की बनावट व कार्यविधि लगभग समान है। इन एन्जाइमों का एक मुख्य गुण यह है कि आयन परिवहन उत्प्रेरण के दौरान ए.टी.पी. के विखंडन से प्राप्त फॉस्फेट अणु इनसे ही जुड़ जाता है। अन्य पंपों के मुख्य उदाहरण हैं ; कैलशियम ए.टी.पीएज (Ca^{++}-ATPase) मांसपेशियों की झिल्ली में पाया गया है जो पेशी संकुचन नियंत्रित करता है ; प्रोटान-पोटेशियम ए.टी.पीएज जीवधारियों के पेट में पाया जाता है जो हाइड्रोक्लोरिक अम्ल पैदा करने का कार्य करता है आदि। आयन पंपों की खोज से नयी और प्रभावपूर्ण औषधिओं का विकास हो रहा है जिससे चिकित्सा, रसायन और जीव विज्ञान में चमत्कारिक परिवर्तन की भरपूर आशा है।

कुछ रोचक जानकारियां

1. पक्षियों के घोंसलों में सबसे बड़ा घोंसला 'मेगापोडस' नामक पक्षी का होता है। इसकी लंबाई 1.5 मीटर के लगभग होती है।
2. 'जैकबीना' पक्षी के पंख चाकू की धार के समान पैने होते हैं।
3. जूनागढ़ के सक्करबाग चिड़ियाघर में 52 सिंह हैं।
4. 'फ्लॉवर पेकर' विश्व का सबसे छोटा पक्षी है।
5. 'नॉकाडैम हार्सीवल' पक्षी केवल अंडमान द्वीप समूह में ही पाये जाते हैं।
6. भारत का प्रथम पक्षी अस्पताल दिल्ली में स्थित है।
7. सबसे धीमी गति से उड़ने वाला पक्षी कठफोड़वा (वुडपेकर) है यह 8 किमी. प्रति घंटे की चाल से उड़ता है।
8. नील नदी जो मिस्र देश में है, वर्ष 829 और 1010 ई. में अति शीत के कारण जम गयी थी।
9. मार्सीहिल कॉलेज, कैन्टन, उत्तरी कैरोलिना (अमरीका) के 97 छात्रों ने मिलकर लगभग 34,000 पौंड भार वाले संपूर्ण घर को उठा लिया था तथा इसे 50 गज दूरी तक ले जाने में भी सफलता प्राप्त की थी।
10. जाइंट रिक्वड की जीभ्रा आख वालों से चार गुनी बड़ी होती है।
11. एक पौंड लोहे में कुल परमाणुओं की संख्या 4,891,500,000,000,000,000,000,000 होती है।
12. जापान की रकॉडेड संगीत विक्रय करने वाली एक कंपनी कुछ विशिष्ट प्रकार के संगीत कैसेट बेचती है जिससे कुत्तों को सो जाने में आसानी होती है।
13. 46×10^{12} वर्ष पूर्व पृथ्वी से चंद्रमा की दूरी 1,35,000 मील कम थी, जितनी कि आज है।

संग्रहकर्ता : **विजया तिवारी**
द्वारा श्री राम प्रताप तिवारी,
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम, रांची 834010

टिप्पणियां

1. लैक्टोज मुक्त दूध उपलब्ध कराने का प्रयास

भारत और अन्य देशों की दुग्ध शोध प्रयोगशालाओं में यह अनुसंधान जारी है कि जानवरों के दूध को किस प्रकार विटामिन-सी और लौह तत्त्व से परिपूर्ण किया जाये क्योंकि ये दोनों तत्त्व दूध में नहीं पाये जाते हैं। कुछ बच्चे और कुछ वयस्क भी दूध पसंद नहीं करते हैं लेकिन ये लोग दही को बड़े चाव के साथ खाते हैं। इसका प्रमुख कारण होता है उनमें लैक्टोज के प्रति असहनशीलता। इसलिए वैज्ञानिकों द्वारा अब दूध को लैक्टोज से मुक्ति दिलाने की कोशिश की जा रही है। यदि शोधरत वैज्ञानिकों का प्रयोग व्यावसायिक स्तर पर सफल रहा तो संभव है कि आगामी दशक में ग्राहकों को लैक्टोज मुक्त दूध, विटामिन-सी, खास प्रोटीन की प्रतिशत वाला दूध, मानव दूध की गुणवत्ता वाला गाय का दूध, और गर्भ निरोधक के रूप में इस्तेमाल किया जाने वाला दूध बाजार में खुलेआम उपलब्ध हो सकेगा।

यह सब करिश्मा वैज्ञानिक आनुवांशिकी इंजीनियरी के माध्यम से दूध की संरचना में व्यापक और क्रांतिकारी परिवर्तन द्वारा संभव है। इस प्रक्रिया के द्वारा दूध में विशेष प्रकार के विटामिन और प्रोटीन का प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. एन. सी. गांगुली का मानना है कि आनुवांशिकी इंजीनियरी और डी. एन. ए. तकनीकी की सहायता से ऐसा दूध सिर्फ जानवरों से ही नहीं बल्कि मानवों (मादा) से भी हासिल किया जा सकता है

वैज्ञानिकों का दावा है कि जानवरों की स्तन ग्रंथियों में केसीन जीन के नियंत्रक क्षेत्र तथा जीन की खुराक नियंत्रित कर दूध में वांछित प्रोटीन की मात्रा 20 से 30 प्रतिशत तक बढ़ायी जा सकती है या इतनी ही मात्रा में नये प्रोटीन डाले जा सकते हैं। स्तन ग्रंथियों में नये प्रकार के जीन (प्रोटीन की आधारभूत संरचना) प्रवेश कराने में विकसित देशों की दुग्ध शोध प्रयोगशालाओं में सफलता प्राप्त हो चुकी है। भारत में कई शोध संस्थानों में इसी प्रकार का शोध एवं अध्ययन चल रहा है। विशेषकर गाय के दूध में वांछित परिवर्तन हेतु गाय की स्तन ग्रंथियों की जीन खुराक नियंत्रित कर उच्च प्रोटीन वाला ऐसा दूध प्राप्त किया जा सकता है जो कुपोषित बच्चों के लिए खास लाभदायक हो। दूध के स्रोत का अध्ययन करके उसमें इस तरह के रासायनिक परिवर्तन की कोशिश की जा रही है कि दूध में मधुमेह रोग के कारकों को पूर्णत. निकाल दिया जाये। स्तन ग्रंथियों में आनुवंशिकी बदलाव लाकर ऐसा दूध भी प्राप्त किया जा सकता है जो दूध की गर्भनिरोधक क्षमता को काफी अधिक बढ़ा दे। यदि दूध की इस आधारभूत संरचना का समुचित विश्लेषण किया जा सका तो न केवल गर्भनिरोधक दूध का उत्पादन किया जा सकेगा, बल्कि गर्भ निरोधकों के विकास के लिए नयी प्रक्रिया सामने आ सकेगी। बच्चों के लिए मां का दूध अमृत के समान होता है जिसका विकल्प कोई और दूध नहीं हो सकता। यही बच्चों के लिए संपूर्ण आहार है। इसलिए मानव दूध का अध्ययन करके यह पता लगाने की कोशिश की जा रही है कि किसका जीन बच्चों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करता है। चूंकि मां का दूध बच्चों के लिए अच्छा माना जाता है इसलिए यह पता लगाने की भी कोशिश की जा रही है कि गाय या भैंस के दूध में किस तरह के परिवर्तन लाये जायें ताकि वह मानव दूध की भौतिक-रासायनिक संरचना के अनुरूप बन जाये।

डॉ. आर. एस. सेंगर
1752/10 टीचर्स होम, गो. ब. पंत कृषि एवं
प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर - 263145

2. भारतीय डाक विभाग के टिकट पर अंकित पारिजात वृक्ष गोरख इमली है :

लखनऊ के पड़ोसी जनपद बाराबंकी में एक अद्भुत तथा दुर्लभ वृक्ष है जिसको 'पारिजात' के नाम से जाना जाता है। जनश्रुति तथा जिला प्रशासन द्वारा प्रसारित विवरण के अनुसार यह वृक्ष महाभारत कालीन है। ऐसी मान्यता है कि इस वृक्ष की पूजा तथा दर्शन से समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

भारतीय डाक विभाग ने इस वृक्ष पर दो डाक टिकट (चित्र) 8 मार्च 1997 को जारी किये। क्रमशः पांच और छ : रुपये मूल्य के इन डाक टिकटों में पारिजात वृक्ष और उसका पुष्प प्रदर्शित है। प्रथम दिवस आवरण

पर इस वृक्ष की पेंटिंग को चित्रित किया गया है। डाक टिकट के साथ जारी विवरणिका में इसे देववृक्ष माना गया है। विवरणिका में पारिजात का वर्णन निम्न प्रकार से है।

"पारिजात को "हरसिंगार", शेफाली, शेफालिका और नाइट जैस्मीन नामों से भी जाना जाता है। यह सुविदित है कि पारिजात के पुष्प संध्या के समय ही खिलते हैं और अगली सुबह झड़ जाते हैं। इसकी शाखाएं चतुष्कोणीय और पुष्प सुवासित होते हैं। इसके पुष्पों की नलिका केसर रंग की होती है व पुष्पांग शुभ्र होते हैं। इसके पुष्प अगस्त से अक्तूबर के बीच खिलते हैं।

भारत में यह वृक्ष हिमालय की बाहरी श्रेणियों में लगभग 1400 मीटर की ऊंचाई तक उगता है, तथा जम्मू व कश्मीर, नेपाल होते हुए पूर्व में असम, बंगाल, त्रिपुरा तक व मध्य भारत से होते हुए दक्षिण में गोदावरी तक पाया जाता है। भारत के अतिरिक्त यह वृक्ष थाईलैंड, इंडोनेशिया, नेपाल और पाकिस्तान में भी पाया जाता है।

उद्यानों को सुंदरता प्रदान करने के अतिरिक्त पारिजात औषधोपयोगी भी है। इसकी पत्तियों का रस स्वाद में कड़वा व अम्लीय होता है। बुखार के उपचार में इसकी पत्तियों का रस लाभदायक माना जाता है। इसकी छाल का, यदि औषधि के रूप में उपयोग किया जाय तो यह फेफड़ों की सूजन में राहत पहुंचाता है। इसकी छाल से पैदा होने वाला तेल आंखों के दर्द में राहत पहुंचाता है और इसे 'हेयर टॉनिक' के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। पुराने ज्वर के उपचार हेतु इसकी पत्तियों के ताजे रस को शहद में मिलाकर लेने से अत्यंत राहत मिलती है। धीमी आंच पर तैयार किया गया इसकी पत्तियों का काढ़ा पुराने साइटिका दर्द में आराम देता है। इसकी पत्तियों के रस में थोड़ी चीनी मिलाकर उसे बच्चों के पेट की बीमारियों के इलाज के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसकी 6-7 कोमल पत्तियों को थोड़ी सी ताजी अदरक के साथ पानी में मसलकर लेप करने से तेज बुखार में आराम मिलता है। हालांकि, इसके पुष्प स्वाद में कड़वे होते हैं लेकिन ये क्षुधाकारक और पेट दर्द में लाभदायक होते हैं। इसके बीजों का चर्म रोगों और बवासीर के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है।"

विवरणिका में पारिजात के उपरोक्त वर्णन ने विवाद उत्पन्न कर दिया है। दरअसल वर्णित तथ्य *निक्टेन्थस आरबोरट्रिसट्रिस* (Nyctanthes arbortristis) जिसे संस्कृत में पारिजात या शेफालिका और अंग्रेजी में नाइट जैस्मीन कहते हैं और हम सब हरसिंगार नाम से जानते हैं, के लिए प्रमाणित हैं। उपरोक्त वर्णन केंद्रीय औषधीय एवं सगंध पौध संस्थान द्वारा प्रकाशित, ठाकुर आदि द्वारा लिखित पुस्तक "मेजर मेडिसिनल प्लान्ट्स ऑफ इंडिया" में लगभग शब्दशः *निक्टेन्थस आरबोरट्रिसट्रिस* के लिए दिया गया है। इस पौधे के उपरोक्त औषधीय गुण एस. के. जैन एवं रॉबर्ट ए. डिफिलिप्स की पुस्तक "मेडिसिनल प्लान्ट्स ऑफ इंडिया" में भी वर्णित हैं। विवाद का विषय यह है कि विवरणिका में वर्णित तथ्य तो निक्टेन्थस आरबोरट्रिसट्रिस के विषय में हैं जबकि डाक टिकट तथा प्रथम दिवस आवरण पर जो चित्र दिये गये हैं, वे दूसरे वृक्ष, जिसे वनस्पति विज्ञान में *एडेनसोनिया डिजिटेटा* (Adansonia digitata) कहा जाता है, के हैं। सत्य तो यह है कि पारिजात के नाम से प्रसिद्ध, बाराबंकी स्थित वृक्ष एडेनसोनिया डिजिटेटा ही है जिसे संस्कृत में गोरक्षी, हिंदी में गोरख इमली या गोरख आमली और अंग्रेजी में 'बाओबाब' कहते हैं।

गोरख इमली 'माल्वेसी' कुल का वृक्ष है जो मूलतः अफ्रीका में पाया जाता है। संभवतः मुगल काल में व्यापारियों के द्वारा यह भारत में लाया गया। इसके वानस्पतिक नाम में 'एडेनसोनिया' अठारहवीं शताब्दी के फ्रांसीसी वनस्पति विज्ञानी एम. एडेनसन की स्मृति में तथा "डिजिटेटा" अंगुली के आकार की पत्तियों से

संबंधित है । इस वृक्ष का आकार अनोखा होता है । इसका अत्यंत मोटा तना (अफ्रीका में 30 मीटर मोटाई तक) तथा प्राचीनता इसको अद्‌भुत वृक्ष बनाती है । विशेष रूप से पत्तियां गिर जाने पर विकृत होकर यह अत्यंत विचित्र दिखाई देता है । वृक्ष अधिकतम 20 मीटर ऊंचे होते हैं और इनकी छाल समतल और चिकनी होती है । पर्णवृंत लंबा और मजबूत होता है जिससे एक ही स्थान से 5-7 पत्रक निकलते हैं । फूल 10-12 सेमी. आकार के सफेद होते हैं । लगभग 20-30 सेमी. लंबे, धूसर-भूरे रंग के फल, तूंबाकार होते हैं और मोटे डंठल से लटके होते हैं । फल के ऊपरी कठोर आवरण के नीचे गूदा होता है जिसमें बीज होते हैं । फलों के गूदे को बंदर काफी चाव से खाते हैं जिसके कारण इसे अफ्रीका में "मंकी ब्रेड ट्री" भी कहते हैं ।

गोरख इमली की हल्की और कोमल लकड़ी का प्रयोग माचिस की तीलियां बनाने में किया जा सकता है । इसकी छाल के रेशे काफी मजबूत होते हैं जिनका प्रयोग रस्सी बनाने में किया जा सकता है । छाल को काटने पर एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसका प्रयोग घाव व फोड़े-फुंसी ठीक करने के लिए करते हैं । सूखी पत्तियां स्वेदनकारी होती हैं और गुर्दे से संबंधित परेशानियों को दूर करती हैं । इसके फलों का गूदा प्रशीतक होता है तथा ज्वर और अतिसार में प्रयोग किया जाता है । हाल के वर्षों में, अफ्रीकी देशों में इसकी पहचान विटामीन-सी के प्रचुर स्रोत के रूप में की गयी है ।

इसके विपरीत पारिजात नाम से जाना जानेवाला *निक्टेन्थस आरबोरट्रिसट्रिस* मूलतः भारत का पौधा है । मध्य भारत और हिमालय के नीचे के क्षेत्रों में यह प्राकृतिक रूप के उगता है तथा लगभग संपूर्ण भारत में बाग-बगीचों में लगाया जाता है । यह ओलिएसी कुल का झाड़ी-नुमा छोटा वृक्ष है । *निक्टेन्थस* ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ "रात का फूल" है । *आरबोरट्रिसट्रिस* का अर्थ "दुखी वृक्ष" है जो कदाचित इसकी दिन में दिखने वाली दशा के कारण है । इसके फूल सफेद तथा नीच नारंगी लाल होते हैं जिनकी सुंगध चमेली या रात-रानी की तरह होती है । वृक्ष के विभिन्न भागों के उपयोग डाक विभाग द्वारा जारी विवरणिका में दिये हुए हैं ।

जहां तक बाराबंकी के पारिजात की दुर्लभता का प्रश्न है, *एडेनसोनिया डिजिटेटा* के तीन वृक्ष लखनऊ में उपलब्ध हैं । एक प्राणी-उद्यान में, तथा एक-एक राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान के वनस्पति उद्यान तथा बंथरा अनुसंधान केंद्र में । मुंबई तथा उसके उपनगरीय क्षेत्रों में गोरख इमली के कई वृक्ष विद्यमान हैं ।

डॉ. श्रीकृष्ण तिवारी
वैज्ञानिक,
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान,
लखनऊ - 226 001

3. मरु क्षेत्र के उपयोगी पौधे

तुंबा : तुंबा (सिटरुलस कोलोसिन्थिस) कुकुर-बिटेसी कुल की एक बहु वर्षीय भूशाई बेल है जो रेगिस्तानी क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप में पायी जाती है । इसकी 4-5 प्रजातियां अफ्रीका एवं एशिया के उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में मिलती हैं । भारत के विभिन्न क्षेत्रों में तीन प्रजातियां तुंबा, तरबूज (सिटरुलस वलगेरिस) व टिंडा (सिटरुलस फिस्तुलोसस) मिलती हैं ।

तुंबा का जड़ तंत्र विकसित होता है । इसकी पत्तियां डेल्टाकार होती हैं । पुष्प ऊपर से हल्के हरे व नीचे से मटमैले रंग के होते हैं तथा नर एवं मादा पुष्प अलग-अलग होते हैं । इसके फल 5-8 इंच व्यास के होते हैं जो शुरु में हरे रंग के होते हैं तथा पकने पर कुछ पीले रंग के हो जाते हैं । तुंबा की बेलें मरुस्थलीय रेतीली एवं गहरी भूमि में अधिक फैलती हैं । बुवाई हेतु मानसून की पहली वर्षा (जून/जुलाई) के बाद का समय उपयुक्त रहता है । अंकुरण हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को बोरी के टाट में डालकर पानी में भिगो दें तथा भीगे हुए बीजों को डेढ़ फीट भूमि में गहरा गड्ढा कर गाड़ दें जिस पर थोड़ा-थोड़ा पानी हमेशा डालते रहें जिससे बीज भीगे रहें । 3-4 दिन बाद बीजों को बाहर निकाल कर टाट पर रगड़ लें तथा हवा में सुखा लें । अब बीजों की बुवाई करें । बुवाई हेतु 3-3 मीटर दूर कतारों में 1-1 मीटर की दूरी पर 2-3 उपचारित बीज 2 सेमी. गहराई में दबाना उत्तम रहता है ।

तुंबा के फल नवंबर माह में पककर पीले पड़ने लग जाते हैं अतः पहली तुड़ाई नवंबर के अंत में, दूसरी तुड़ाई दिसंबर के अंत में करनी चाहिए। तुड़ाई के 20-25 दिन बाद फलों के सूखने या गल जाने पर बीज अलग कर लेना चाहिए।

उपयोग : इसके विकसित फल के सूखे गुदे में "कोलोसींथ" नामक औषधि का संघटक मिलता है जो बाजार में कड़वे स्वाद वाले गंधयुक्त पाउडर के रूप में मिलता है। इसकी लुगदी से अत्यंत गुणकारी औषधि "जुलाब" तैयार की जाती है। यह औषधि यूरोप, अरब व सीरिया में बड़ी मात्रा में खरीदी जाती है। इसकी जड़ से प्राप्त रेजिन से भी कई औषधियां प्राप्त की जाती हैं जो पेट साफ करने, मानसिक तनाव, पीलिया, मूत्र रोग व गठिया आदि रोगों में गुणकारी साबित हुई हैं। तुंबे के बीज से 21 प्रतिशत तेल निकलता है जो साबुन उद्योगों एवं अन्य उद्योगों में उपयोगी है। वर्षाऋतु में तुंबा के पौधे उगाकर (10x2 मीटर की दूरी पर) चारे के रूप में काम लिये जा सकते हैं। यह चारा बकरियों के दुग्ध उत्पादन क्षमता में वृद्धि करता है। इसके बीज का आटा बनाकर, बाजरे के आटे में मिलाकर रोटी के रूप में खाया जाता है। बीज को पीसने से पहले उसे उबालकर उसका कड़वापन निकाल लेते हैं।

रोहिड़ा *(टेकोमेला अनडुलेटा)* : बिग्नोनिएसी कुल का एक महत्वपूर्ण सदस्य है। मरुस्थल में इमारती लकड़ी और अपने औषधीय गुणों के कारण यह "थार मरुस्थल का मारवाड़ टीक" भी कहलाता है। यह पश्चिमी राजस्थान के मरुस्थली जंगलों और उसकी सीमाओं से सटे हरियाणा क्षेत्र व आसपास के इलाकों में मिलता है। वर्तमान में ईंधन व इमारती लकड़ी के लिए इसकी अंधाधुंध कटाई से इस जाति के वृक्षों की संख्या बहुत कम हो गयी है।

रोहिड़ा एक सदाबहार छोटे आकार का वृक्ष है, जिसका तना टेढा मेढ़ा व डालियां झुकी हुई होती हैं। इसकी वृद्धि दर बहुत कम होती है। इसकी ऊंचाई 4-8 सेमी. प्रति वर्ष तथा तने की मोटाई 50-90 सेमी. प्रति वर्ष तक ही बढ़ पाती है। इसके पत्ते प्राय: नवंबर के प्रथम सप्ताह में झड़ने शुरू होते हैं तथा मार्च के अंत तक झड़ते हैं। फरवरी में नये पत्ते आने शुरू हो जाते हैं तथा इस प्रकार इस वृक्ष में कभी भी पूरा पतझड़ नहीं होता है। इसमें फूल आने का समय दिसंबर से लेकर मध्य अप्रैल के बीच रहता है तथा वृक्ष की टहनियों पर बड़े आकार के सुंदर व हल्के पीले गहरे संतरी या लाल रंग के फूल खिलते हैं। फल मई-जून माह में पकते हैं। बीजों की अंकुरण क्षमता पकने के तुरंत बाद अधिकतम व एक वर्ष बाद शून्य हो जाती है। इसे उगाने के लिए बीज अथवा कलम (कटिंग) का उपयोग किया जा सकता है।

उपयोग : रोहिड़ा एक महत्वपूर्ण एवं कीमती लकड़ी वाला वृक्ष है। इसकी लकड़ी सख्त एवं हल्के भूरे रंग की होती है जिससे खिलौने, फर्नीचर तथा कृषि उपकरण बनाये जाते हैं। इसकी शाखाओं को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसके पत्ते व फल पशुओं के चारे के काम आते हैं तथा फूलों में परागकण की मात्रा अधिक होने से यह शहद प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह कृषि वानिकी के लिए एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रजाति है।

एन. के. बोहरा

प्लॉट न. 389, गली न. 10, मिल्क मेन कॉलोनी,
पालरोड, जोधपुर (राज.)

4. वेल्डन प्रक्रम - कुछ नये विकास

दो धातुओं को जोड़ने की प्रक्रिया बहुत पुरानी है। वेल्डिंग आज एक पूर्ण तकनीक का रूप ले चुकी है एवं इस हेतु पदार्थों की चयन सीमा अत्यधिक विस्तृत हो गयी है। उद्योगों में बेहतर उपयोग के लिए जरूरी है कि यह प्रक्रम किफायती और अच्छी गुणवत्ता के जोड़ देने में सक्षम हो। किसी भी संविरचना पर व्यय का एक हिस्सा उसमें वेल्ड जोड़ व उसकी मरम्मत पर कायम होता है। आज महंगी धातुओं के उपयोग में उनकी मरम्मत भी महंगी हो गयी है जो अतिरिक्त व्यय है।

आज मझौले स्तर के उद्योगों में भी गुणवत्ता के प्रति नयी जागरूकता आ गयी है एवं अनुसंधान एवं विकास की आंशिक सुविधा उपलब्ध है। अभिकल्पन के प्रथम चरण से संविरचना के अंतिम चरण तक हर पायदान पर लिखित पद्धति के उपयोग से वेल्ड-जोड़ गुणवत्ता में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। इस क्षेत्र में व्यावसायिक

संस्थाओं का योगदान सराहनीय एवं अपेक्षित है। वेल्ड जोड़ में निम्नलिखित विशेषताएँ अपेक्षित हैं :-

1. जोड़ की दक्षता, मूलधातु की दक्षता से अधिक होनी चाहिए।
2. जोड़ का अभिकल्पन सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।
3. जोड़ में मरम्मत की गुंजाइश नगण्य होनी चाहिए।
4. जोड़ किफायती होना चाहिए।
5. जोड़ एवं ऊष्मा प्रभावित क्षेत्र में प्रतिबल रेखाएं संभवत: एक समान होनी चाहिए।

वेल्डन प्रक्रम का दायरा विस्तृत हो गया है। साधारण आर्क वेल्डिंग से लेकर लेज़र के उपयोग तक इसके क्षेत्र में आ गये हैं। महंगी धातुओं की वेल्डिंग में रक्षा, अंतरिक्ष, परमाणु ऊर्जा, बिजली उत्पादन व पेट्रोलियम उत्पादन जैसे विशिष्ट क्षेत्रों में "मिग" व "टिग" प्रक्रमों का उपयोग बृहद स्तर पर हो रहा है। आज कम लागत व बेहतर गुणवत्ता के जोड़ प्राप्त करने के लिए ओसिलेटरी (oscillatory) एवं घूर्णन आर्क, सीम ट्रेसिंग एवं माइक्रो प्रोसेसर पर आधारित कंप्यूटरीकृत नियंत्रण प्रणाली का उपयोग बृहद स्तर पर बेहतर गुणवता के लिए किया जा रहा है। एक्स-रे, मेटलोग्राफी (metallography), "स्कैनिंग व पारगम्य (ट्रांसमिशन) इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी" व "इलेक्ट्रॉन प्रोब माइक्रो विश्लेषण" का उपयोग असफलता (Failure) विश्लेषण में किया जा रहा है एवं इनके उपयोग से वेल्ड जोड़ के गुणवत्ता-विकास में नया आयाम जुड़ गया है।

विभिन्न वेल्डन-प्रक्रमों की उपयोगिता अनेक विशिष्ट क्षेत्रों में सिद्ध हो गयी है, जैसे -प्रतिरोध, प्रसरण, घर्षण व अल्ट्रासॉनिक वेल्डिंग प्रक्रम। विशेषकर प्रतिरोध वेल्डिंग का उपयोग वाहन-निर्माण एवं परमाणु ईंधन संविरचन में हो रहा है जो उच्चस्तरीय विकास का प्रमाण है। इलेक्ट्रॉन पुंज जैसे उच्च ऊर्जा स्रोत के उपयोग ने अधिक भेदन व जटिल आकार की उच्च गति से वेल्डिंग को संभव किया है।

गुणवत्ता नियंत्रण हेतु अविनाशी परीक्षण-पद्धति का पूरे वेल्डिंग प्रक्रम के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दृश्य परीक्षण, तरल डाई परीक्षण, पराश्रव्य परीक्षण, रेडियोग्राफी परीक्षण, चुंबकीय चूर्ण परीक्षण, भंवर धारा (Eddy current) परीक्षण व रिसाव परीक्षण जैसी विधियां प्रमुख हैं।

इस क्षेत्र में हुए विकास का उपयोग तभी संभव है जब कार्यान्वयन स्तर पर अर्थात वेल्डर को नवीन विकास की जानकारी उपलब्ध हो एवं उसके अनुरुप प्रशिक्षण दिया जाये। आज हर रोज विकास की नयी सीढ़ियां चढ़ते उच्च तकनीक व तीव्र वेग के इस युग में प्रशिक्षण ही किसी भी तकनीक को कार्यान्वित करने में सक्षम है।

पी. के. इस्सर
वैज्ञानिक अधिकारी, डब्ल्यू. आई. पी.,
भा. प. अ. केंद्र, तारापुर,
पोस्ट - घिवली, जिला-थाना - 401 502

5. खुबानी का तेल : औषधि भी, प्रसाधन भी

जम्मू व काश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अंचल में पैदा होने वाले फलों में खुबानी का विशिष्ट स्थान है। खुबानी को एप्रीकॉट कहा जाता है तथा इसका वानस्पतिक नाम प्रूनस आर्मेनिका है। शिरले अर्ली, न्यू लार्ज अर्ली, कैशा, न्यू कैसल, शकरपारा आदि इसकी प्रमुख किस्में है। खुबानी के बीजू पेड़ कुमाऊं में चुवारु तथा गढ़वाल में चुलू कहलाते हैं।

खुबानी के फल पक जाने पर गहरे पीले, गहरे नारंगी तथा लालिमा युक्त होते हैं। इनमें पर्याप्त मात्रा में खनिज पाये जाते हैं। ये फल खट्टे-मीठे, स्वादिष्ट तथा स्वास्थवर्धक होते हैं।

खुबानी के गूदे के बीचों-बीच गुठली होती है। इस गुठली को तोड़ने पर अंदर जो गिरी निकलती है वह पर्याप्त तेल का भंडार है। इस तेल का प्रयोग खाने, औषधि तथा प्रसाधन तीनों रुपों में किया जाता है।

तेल निकालने की परंपरागत विधि में गुठलियों को तोड़कर गिरी को पर्याप्त सुखा लिया जाता है। फिर उन्हें ओखल में कूट कर तेल निकाला जाता है। इस क्रिया में तेल की अत्यधिक बरबादी हो जाती है अत: आजकल तेल पेरने की मशीन अथवा तेल घानी (कोल्हू) की सहायता से तेल निकाला जाता है। इस तेल को भली

भांति छानकर बोतलों में रखा जाता है। अवशिष्ट पदार्थ या खली को महीन पीस कर उबटन (स्क्रब) के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

खुबानी के तेल (एप्रीकॉट आयल) की संरचना में माइरिस्टिक अम्ल 1.1 पामिटिक अम्ल 3.5 स्टीपाटिक अम्ल 2 ओलिइक अम्ल 73.4 तथा लिनोलिक अम्ल 20 प्रतिशत पाया जाता है।

यह तेल हल्के पीले रंग का होता है। इसका उपयोग खाद्य तेल के रूप में तो किया ही जाता है साथ ही यह एक अच्छी औषधि भी है। यह वात रोग, जोड़ों के दर्द तथा त्वचा रोगों तथा दाद, खाज, खुजली, खुश्की आदि में लाभदायक है। त्वचा में जल्दी समा जाता है तथा अतिरिक्त चिपचिपाहट नहीं छोड़ता।

खुबानी का तेल एक श्रेष्ठ प्रसाधन है। आजकल प्रसाधन-सामग्री निर्माण में यह बादाम के तेल का सच्चा विकल्प बनता जा रहा है। इस तेल के प्रयोग से त्वचा सुकोमल, कांतिमान तथा आकर्षक बन जाती है। दाग-धब्बे शनैः-शनैः मिट जाते हैं। रंग-रूप में निखार आता है। नियमित प्रयोग बहुत लाभदायक है।

खली के चूर्ण (स्क्रब) को दूध या पानी में घोलकर त्वचा पर लगाया जाता है। आधे घंटे बाद स्वच्छ जल से धो दिया जाता है। त्वचा निखर उठती है।

इस तेल के विपणन से अच्छी आय प्राप्त हो रही है। इस तेल की औसतन कीमत एक हजार रुपया प्रति किग्रा. है। एक किग्रा. खुबानी गिरी से लगभग चार सौ ग्राम. तेल निकल आता है। इस प्रकार व्यवसायिक दृष्टि से भी यह लाभदायक है। यदि जैविक विधि से खुबानी की बागबानी की जाय तो तेल की गुणवत्ता में और भी वृद्धि हो जाती है।

किसान भाइयों को चाहिए कि खुबानी की बागवानी को विस्तृत करें और "आम के आम गुठलियों के दाम" वाली कहावत को चरितार्थ करें।

मोहन चंद्र कबड़वाल
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
मुक्तेश्वर-कुमाऊं, जिला-नैनीताल -263 138

विज्ञान कविता

विज्ञान यान

विज्ञान यान पर चढ़कर हम,
मानवता का कल्याण करें।

विज्ञान यान सर्वोपरि है
ऊंचा है वाद-विवादों से-
मानवता का यह प्रहरी है
देता है बचा विषादों से।
ईराक आज भी जिंदा है
जापान गवाही देता है-
नापाक बमों की वर्षा से
हर राष्ट्र सुयश खो देता है।
हो पाक या कि भारत महान
कब दुष्प्रचार बल देता है?
हे जग के भाग्य विधाताओं!
हम सर्वनाश से डरें-डरें,
विज्ञान यान पर चढ़कर हम,
मानवता का कल्याण करें॥

कुछ परमाणु बम, कुछ न्यूक्लीय बम,
न्यूट्रॉन बम कुछ बना रहे -
कुछ राष्ट्र, शक्ति में मदमाते
सबको ही ठेंगा दिखा रहे।
वैज्ञानिक तपते रात-दिवस,
इसलिए कि मानव बचा रहे,
हो जग की धरती हरी भरी
आसमां सभी का सजा रहे।
जन-जन को सुखी बनाने को
धरती पर वैज्ञानिक आते,
हर प्राणिमात्र के दुख से वे
लगता है विगलित हो जाते।
उनके सुखदाई सपनों को,
मिल सुख-सौरभ से भरें-भरें
विज्ञान यान पर चढ़कर हम,
मानवता का कल्याण करें॥

रामगोपाल परिहार
हिंदी विभागाध्यक्ष,
जे. एन. वी. बिरखड़ी (रौंन), भिंड - 477 335

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

1. पारद वाष्प लैंपों हेतु रेअर अर्थ फॉस्फर विकसित :

इस केंद्र के रेअर अर्थ विकास निष्कर्ष अनुभाग ने यूरोपियम सक्रियत इंडियम वेडेंट किस्म के फॉस्फर बनाने की तकनीक विकसित की है । इस फॉस्फर की ऊर्जा परिवर्तन दक्षता ज्यादा है तथा इसका उपयोग उच्च दाब के पारद वाष्पीय तथा धात्वीय हेलाइड (हाई-प्रेसर मर्क्यूरी वेपर व मेटल हेलाइड) लैंपों में होता है । लैंपों की भीतरी सतह पर फॉस्फर का विलेप किया जाता है । इस पर्त का कार्य लैंप में उत्पन्न प्रकाश की अदृश्य परा-बैंगनी किरणों को दृश्य-प्रकाश की किरणों में, जो रंग-संघटन में प्राकृतिक दिवसीय प्रकाश के समान होती हैं, परिवर्तित करना है । इस फॉस्फर का उपयोग कर बनाये गये लैंपों पर जो प्रयोग किये गये हैं उनसे इसकी उच्च गुणवत्ता की पुष्टि हुई है । ये लैंप BIS तथा अंतर्राष्ट्रीय मानकों पर खरे उतरे हैं । 2 अप्रैल, 1998 को इस फॉस्फर की पहली बिक्री की गयी । रेअर अर्थ फॉस्फर कार्य भा. प. अ. केंद्र के अनुसंधान व विकास कार्यक्रम की सफलता का एक और नमूना है ।

2. औद्योगिक स्तर पर कोबाल्ट हेतु विलायक निष्कर्षण विधि विकसित :

केंद्र के रेअर अर्थ विकास निष्कर्ष अनुभाग ने हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड द्वारा जिंक उत्पादन के दौरान प्राप्त उपोत्पाद (बाइप्रोडक्ट) 'बीटा' केक से कोबाल्ट निकालने के लिए एक विलायक निष्कर्षण विधि विकसित की है ।

एक पारस्परिक समझौते के अंतर्गत शोध एवं विकास का कार्य ट्रांबे में तथा परीक्षण का कार्य उदयपुर में पूरा हो चुका है तथा बड़े पैमाने वाला एक संयंत्र 99% से अधिक शुद्धता वाले कोबाल्ट का उत्पादन कर रहा है । चूंकि भारत में कोबाल्ट के प्राथमिक स्रोत (प्राइमरी रिसोर्स) नहीं हैं अतः द्वितीयक (सेकेंडरी) स्रोतों से कोबाल्ट की प्राप्ति महत्वपूर्ण हो जाती है । हिंदुस्तान जिंक लि. का 'बीटा' केक एक ऐसा ही स्रोत है । इस नूतन विकसित विधि में केक को भूना जाता है । भूने हुए केक को गंधक अम्ल से निक्षालित (लीच) किया जाता है । निक्षालित द्रव की उपचारिता कर उसे व्यतिकर (इंटर-फिअरिंग) धातुओं लौह और सिलिका से मुक्त किया जाता है । तत्पश्चात स्वच्छ द्रव को विलायक निष्कर्षण के दो चक्रणों से गुजार कर वैद्युत प्रापण (इलेक्ट्रोविंनिंग) द्वारा शुद्ध कोबाल्ट प्राप्त किया जाता है । डाइ-एथिल हेक्सिल फास्फोरिक अम्ल (DEHPA) पहले निष्कर्षण चरण में तथा फास्फोनिक 2-एथिल हेक्सिल 2-एथिल हेक्सिल अम्ल (EHPNA) का दूसरे निष्कर्षण चरण में दक्ष उपयोग इस शुद्धता का कारण है । रेअर-अर्थ पृथक्करण में यह दोनों विलायक इस्तेमाल किये जाते हैं । यहां विकसित विशेषज्ञता, हिंदुस्तान जिंक लि. के माध्यम से, सामरिक क्षेत्र में व्यापारिक तौर पर सफल रही है । इससे केंद्र को तेरह लाख रुपयों की आय परामर्श राशि के रूप में प्राप्त हुई है । विधि को पेंटेट कराया जा रहा है ।

प्रस्तुति : **डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला**
(संपादक),

अन्य समाचार :

1. अब ध्वनि तोप दंगे-फ़साद पर नियंत्रण करेगी :

यदि कहीं पर भीड़ दंगे-फ़साद पर आमादा हो या कहीं पर लोगों में टकराव हो रहा हो जिससे कानून व्यवस्था की स्थिति बड़े खतरे में हो तो पुलिस के पास उसको तितर-बितर करने या उस पर काबू पाने के लिए ऐसे हथियारों की बहुत कमी होती है जो घातक न हों । अब अमरीका के फ़ौजी वैज्ञानिकों ने एक ऐसी ध्वनि तोप बना ली है जो बहुत ज़ोरदार पीड़ादायक ध्वनि की तरंगें छोड़ती है । इस ध्वनि तोप में गोलाबारूद का प्रयोग नहीं करना पड़ता लेकिन यह एक ऐसा शोर पैदा करती है कि मानव तीव्र पीड़ा का अनुभव करता है । यह शोर आधुनिक रॉक संगीत के कॉन्सर्ट (concert) के शोर या कान फाड़ ध्वनि विस्तारक (loudspeaker) के शोर से भी दस गुना अधिक तीव्र होता है । कानों में इससे तीव्रतम पीड़ा होती है, पेट में बल पड़ते हैं, मतली

(उबकाई) होती है और यूँ अनुभव होता है जैसे शरीर के अंग बाहर निकल पड़ेंगे। चूंकि यह पीड़ा सहनशक्ति के बाहर होती है अत: मानव वहाँ से भाग जाने में ही भलाई चाहता है। यह ध्वनि तोप एक साधारण मशीन गन के बराबर होती है जिसमें बहुत बड़ी बैटरी लगायी जाती है। तोप की तरह इसके आगे एक भारी भरकम नाली लगी होती है जो एक सौ दस गज़ की दूरी तक खड़े लोगों पर ध्वनि हमला करती है। ध्वनि का यह आक्रमण एक इलेक्ट्रॉनिक मशीन के द्वारा किया जाता है। इस तोप का प्रयोग करने के लिए तीन आदमियों की आवश्यकता होती है। उसे किसी जीप पर रखकर ले जाया जाता है। इस तोप से किसी एक मानव को निशाना बनाने से लेकर पूरी भीड़ को निशाना बनाया जा सकता है। अमरीका के सुरक्षा संबंधी विभाग पेंटागन को एक ऐसे हथियार की आवश्यकता थी जिसका प्रयोग घातक भी न हो तथा सेना अपनी सुरक्षा भी कर सके। इस आवश्यकता की पूर्ति वैज्ञानिकों ने कर दिखायी।

प्रस्तुति : **सलाहुद्दीन अहमद**
रेडियो रसायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

2. मछली खाने से हार्ट अटैक में कमी

डॉ. क्रिस्टीन अल्बर्ट के नेतृत्व में बोस्टन ब्रिघम एंड वीमेंस हॉस्पिटल के एक अनुसंधानकर्त्ता दल ने जर्नल ऑफ द मेडिकल एसोसिएशन में छपे अपने शोधकार्य के ज़रिए बताया है कि अगर हफ्ते में कम से कम एक बार भोजन में मछली खायी जाय तो हार्ट अटैक का जोखिम 52% कम हो जाता है। मज़े की बात तो यह है कि ये आंकड़े मरीज़ों के बजाय डॉक्टरों की भोजन संबंधी आदतों से इकट्ठा किये गये। यह अध्ययन 1983 में शुरू किया गया और 20,551 पुरुष डॉक्टरों की भोजन संबंधी आदतों पर 13 वर्षों तक नज़र रखी गयी। 40 से 84 वर्ष की उम्र वाले इन डॉक्टरों से नियमित तौर पर सूचनाएं इकट्ठा की जाती रहीं कि इन्होंने रोज़ क्या-क्या खाया। इन्हीं सूचनाओं के गहरे विश्लेषण से पता चला कि सप्ताह में कम से कम एक बार मछली खाने वालों में हार्ट अटैक की घटनाएं सामान्य के मुकाबले आधी रहीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन लोगों की धूम्रपान, शराब आदि आदतों को भी मद्देनज़र रखकर ये विश्लेषण किये गये। यह पाया गया कि सप्ताह में एक या दो बार से अधिक मछली खाने के कोई अतिरिक्त फ़ायदे नहीं हुए। अनुसंधानकर्त्ताओं ने इस प्रभाव को "थ्रेशोल्ड प्रभाव" नाम दिया है और सुझाया है कि संभवत: मछली आदि समुद्री भोजन में पाये जाने वाले n-3 फ़ैटी एसिड्स ही हृदय की सुरक्षा के लिए ज़िम्मेदार हैं। अनुसंधानकर्त्ताओं ने यह भी सुझाया है कि नियमित मछली खाने से पेट की बीमारियों, अस्थमा तथा गठिया आदि रोगों में भी लाभ मिलने के संकेत प्राप्त हुए हैं।

3. पवन चक्कियों से स्वच्छ बिजली :

पर्यावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड गैस के प्रदूषण के कारण ज्यादातर गर्मी लगातार बढ़ी है। विश्व के ज़्यादातर राष्ट्र अब इस बात को मानते हैं कि प्रदूषणकारी गैसों से पर्यावरण को बचाना सभी की ज़िम्मेदारी है। इसीलिए कई देश अब बिजली उत्पादन में पवनचक्कियों तथा जल से बिजली उत्पादन जैसी स्वच्छ टेक्नोलॉजी की ओर उन्मुख हो रहे हैं। इस संबंध में कुछ समाचार इस प्रकार हैं। न्यूज़ीलैंड में टरबाईन के डिज़ाइन में सुधार की लगातार कोशिशें जारी हैं। यह टरबाईन पवनचक्की में इस्तेमाल के लिए होगी। आपको पता है कि वायु, टरबाईन के ब्लेडों को अपने वेग से घुमाती है जिससे यांत्रिक ऊर्जा पैदा होती है। इन ब्लेडों को इस तरह से बनाया गया है कि वायु इनमें दुगनी गति से खिंचती है। साथ ही टरबाईन के रचना-पदार्थ में तब्दीली लायी गयी है जिससे कि वायु की इस ज़बर्दस्त गति से यह टूट न जाय। इस नये पदार्थ को फ़ाइब्रस फ़ेरो-सीमेंट कहा गया है जोकि इस्पात से तीन गुनी शक्ति का है। इंजीनियरों को उम्मीद है कि इस टरबाईन से पारंपरिक टरबाईन के मुकाबले छह गुनी बिजली बनायी जा सकेगी। इस बीच ब्रिटेन में यूरोप का सबसे बड़ा पवनचक्की कॉम्पलेक्स स्थापित किया जा रहा है। इसमें 56 टरबाइनें इस्तेमाल की जायेंगी जिनसे 25000 घरों के लिए पर्याप्त 33 मेगावाट बिजली का उत्पादन हो सकेगा। जल से विद्युत-उत्पादन संबंधी नये अनुसंधान भी ब्रिटेन में चल

रहे हैं। इस सिलसिले में यहाँ के इंजीनियर पॉल ब्रोमले ने "पेडले व्हील" का विकास किया है। यह व्हील उस जल स्रोत से भी बिजली बनाने में समर्थ होगा जिससे एक सेकंड में सिर्फ 70 लिटर जल गिरता है और जल स्रोत की ऊंचाई भी ज़्यादा नहीं, सिर्फ 3 मीटर चाहिए। इतनी कम ऊंचाई और जल वेग से संचालित यह पहला अनोखा व्हील है जिससे जेनरेटर को जोड़ कर बिजली पैदा की जा सकेगी।

4. चीनी के विकल्प :

चीनी यानी शक्कर को रसायनशास्त्र की भाषा में "सुकरोज" कहा जाता है। यही मीठी चीनी आज विश्व के सैकड़ों-करोड़ों लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है। मगर आज कई लोग इसे श्वेत ज़हर कहते हैं, इसलिए कि इसमें कैलोरी कूट-कूट कर भरी हैं। इसी कारण पिछले कुछ वर्षों में ऐसे मीठे रसायनों के निर्माण पर अनुसंधान चल रहा है जोकि शक्कर से भी मीठे हों मगर उनकी कैलोरी-क्षमता नगण्य हो। इस सिलसिले में चीनी से ही कई ऐसे रसायन बनाये गये हैं जो कि चीनी के मुकाबले 5 गुने से लेकर 7500 गुने मीठे हैं। इनका निर्माण चीनी के कुछ हाइड्रॉक्सिल समूहों को क्लोरीन, ब्रोमीन तथा आयोडीन परमाणुओं से विस्थापित कर के किया गया है। इन में सबसे अधिक उपयोगी यौगिक है- "सुक्रालोज़" जो कि चीनी के मुकाबले 600 गुना मीठा है। भोजन में इस्तेमाल योग्य सभी गुण हैं इसमें। मिसाल के तौर पर यह पानी में घुल जाता है, गर्म और ठंडा करने पर भी विघटित नहीं होता आदि। सुक्रालोज का रासायनिक नाम है "ट्राइक्लोरोगेलेक्टोसुकरोज़" जिसे संक्षेप में TCG कहते हैं। इसके रवे भी चीनी की तरह सफेद हैं। सैकरीन के दुर्गुण भी इसमें नहीं हैं, यानी न तो बाद में मुँह में कड़वाहट होती है और न ही इससे किसी प्रकार के कैंसर की संभावना है। सुक्रालोज को ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, रुमानिया, मेक्सिको, रूस तथा कतार आदि देशों ने खाद्य पदार्थ के रूप में स्वीकार कर भी लिया है। सुक्रालोज की इस स्वीकृति के पीछे राज़ यह है कि इसे चीनी यानी एक कुदरती पदार्थ से बनाया जाता है जबकि सैकरीन जैसे मीठे अन्य पदार्थ संश्लेषित किये जाते है। आने वाले वर्षों में अन्य देश भी इसे चीनी के स्थान पर स्वीकार कर लेंगे, ऐसी आशा है।

5. मसाले केवल स्वाद के लिए नहीं :

"क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ बॉयोलाजी" के एक ताज़ा अंक में पॉल शर्मन तथा जेनीफ़र बिलिंग नामक अनुसंधानकर्ताओं ने भोजन में इस्तेमाल किये जाने वाले अन्यान्य मसालों को मानव विकास की महत्वपूर्ण सीढ़ी करार दिया है। उन्होंने कहा है कि ये मसाले बैक्टीरियाओं पर मानव की विजय के प्रतीक रहे हैं। अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि ऐतिहासिक काल से ही मनुष्यों और बैक्टीरियाओं में युद्ध निरंतर जारी रहा है। इस युद्ध के प्रथम चरण में मनुष्य ने भोजन को पका कर पहला मोर्चा जीता। बाद में उसने मसाले और दवाएं खोजीं। मसालों के उपयोग से भोजन तो स्वादिष्ट बना ही, मनुष्य ने पाया कि मसालों के उपयोग से वे बीमार भी कम पड़े। इनमें आयु-वृद्धि भी हुई। चुनांचे मसाले दैनिक जीवन का अंग बन गये। गर्म देशों में मसालों का इस्तेमाल ज़्यादा हुआ क्योंकि गर्म आबो-हवा में बैक्टीरिया ज़्यादा शक्तिशाली हो जाते हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने कहा है कि लहसुन, प्याज़, हींग, इलायची, मिर्च, नींबू आदि मसाले 25% से लेकर 100% तक बैक्टीरिया-हनन में समर्थ पाये गये हैं। 36 देशों के 4500 व्यंजनों का हवाला देते हुए अनुसंधानकर्ताओं ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि भोजन के लिए लगातार छिड़े युद्ध में मसालों ने इंसान का पलड़ा लगातार भारी रखा हैं। उन्होंने कहा कि गर्म देशों में शक्तिशाली और ज्यादा मसाले इस्तेमाल का कारण यह नहीं कि इनसे ज़्यादा पसीना आता है जिससे शरीर को ठंडक मिलती है, बल्कि यह है कि ये बैक्टीरिया को मारने में ज़्यादा सक्षम हैं। उन्होंने कहा है कि कालांतर में मसालों ने मनुष्य के गुणसूत्रों में भी सुधार किया है जिससे व्यापक प्रदूषण आदि समस्याओं के बावजूद ये बैक्टीरिया से लड़ने में ज़्यादा सक्षम बने हैं।

6. इन्सुलिन के लिए कृत्रिम पैंक्रियाज :

मधुमेह एक पुराना रोग है जो डायबिटीज़ के नाम से आज भी खौफ़ फैला रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक भारत में ही तीन

करोड़ से ज्यादा लोग शक्कर की इस बीमारी को झेल रहे हैं। गाँवों के मुकाबले शहरों में यह रोग 5 गुना ज्यादा है। आज सभी को पता है कि हमारे शरीर में अग्नाशय यानी पैंक्रियाज नामक नलिकाविहीन ग्रंथि द्वारा इन्सुलिन के यथोचित निर्माण न होने के कारण ही यह रोग होता है। विश्वभर में आज अनेक लोग इन्सुलिन का इंजेक्शन लेकर अपने मधुमेह पर नियंत्रण रख पा रहे है। 1921 में कनाडा के ईस्टर्न ओन्टारियो विश्वविद्यालय में बेंटिंग तथा मेक्लॉयड ने इन्सुलिन की खोज की जिस पर उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला। इस बीच अनेक अनुसंधान चलते रहे हैं। मृतक व्यक्तियों के पैंक्रियाज से इन्सुलिन उत्पादन कोशिकाओं का मरीज़ों में प्रत्यारोपण करने संबंधी तजुर्बों में कुछ सफलता मिली है। नये किस्म के प्रयोगों के तहत सैन फ्रांसिस्को के कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ताओं ने चूहों पर कुछ प्रयोग किये हैं। पहले इन चूहों की इन्सुलिन निर्माण करने वाली बीटा कोशिकाओं को खत्म कर दिया गया, बाद में इन चूहों में एक नयी जीन प्रत्यारोपित की गयी। इन्सुलिन बनाने वाली इस जीन ने एक सप्ताह तक ठीक से काम किया। अब इस अवधि को बढ़ाने की कोशिश जारी है। एक अन्य प्रयोग ब्रिटेन के डि मोंटफोर्ट विश्वविद्यालय में चल रहा है जिसके अंतर्गत एक कृत्रिम पैंक्रियाज़ का इस्तेमाल किया जा रहा है। इसके अग्रणी वैज्ञानिक डॉ. जॉन टेलर का कहना है कि यह पैंक्रियाज़ ग्लूकोज़-संवेदी एक रासायनिक थैली है जिसमें इन्सुलिन भरी रहती है। पेट में यह थैली प्रत्यारोपित करने पर शरीर में ज़रूरत के मुताबिक इस थैली से इन्सुलिन पहुंचता रहता है। इस बीच कुछ बड़ी कंपनियों में इन्सुलिन को पाउडर के रूप में बदलने की स्पर्धा चल रही है ताकि यह पाउडर कैप्सूल, गोली या नसवार के रूप में इस्तेमाल किया जा सके। अगले 5 वर्षों में निश्चित रूप से इन प्रयासों के अच्छे परिणाम आयेंगे और इन्सुलिन-इंजेक्शन की अनिवार्यता से आज़ादी मिल जायेगी, ऐसी आशाएं जगी हैं।

7. सागर में शहर :

आगामी अगस्त महीने से अमरीका के एक इंजीनियर समुदाय द्वारा विश्व के सबसे अनोखे शहर का निर्माण शुरू होने वाला है। जी हाँ, एक ऐसा शहर जो कवि की कल्पना से भी बढ़-चढ़ कर होगा। यह शहर स्थिर नहीं रहेगा बल्कि सागर की लहरों पर लगातार चलेगा, खेलेगा... इसलिए कि यह शहर बसेगा पानी के एक जहाज़ में जो करीब 1 मील लंबा होगा, जिसके 20,000 घरों में 65,000 लोग रहेंगे, जिसमें आवागमन के लिए मुफ्त ट्राम सेवा उपलब्ध रहेगी, वगैरह, वगैरह। इस जहाज़ का नाम रखा गया है "फ्रीडम"। 30 मंजिले इस जहाज़ में शहर की सभी सुविधाएं जैसे कि अस्पताल, रेस्तराँ, खेल के मैदान, हवाई पट्टी, विश्वविद्यालय, सिनेमा घर आदि उपलब्ध रहेंगे। मज़े की बात तो यह है कि इस शहर में अपराध तथा टैक्स जैसी अरुचिकर चीज़ें नहीं होंगी। आशा है कि यह जहाज़ सन 2002 तक बन कर तैयार हो जायेगा और तब तक घरों की अग्रिम बिक्री भी हो चुकी होगी। इसके प्रॉजेक्ट मैनेजर नॉर्मन निक्सन के मुताबिक 1000 घर बुक भी हो चुके हैं। और हाँ, विश्व की जानी-मानी शिपिंग कंपनियों को निर्माण कार्य के लिए ठेके दिये जा रहे हैं। इतने बड़े जहाज़ को बनाना इसलिए भी एक चुनौती भरा काम है क्योंकि इसका निर्माण समुद्र के अंदर ही किया जाना है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के इस करिश्मे के निर्माण में करीब 400 करोड़ डॉलर का ख़र्चा आयेगा। पहले 2000 घरों की बुकिंग पर 35% की छूट दी जा रही है।

प्रस्तुति : **डॉ. देवकी नंदन**
ए-304 बी, हृषीकेश, स्वामी समर्थ नगर,
अंधेरी (प.), मुंबई 400 053

संगोष्ठी समाचार

1. नोबेल पुरस्कार : किसे और किस लिए ?

वर्ष 1997 के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों एवं उनके कार्यों के बारे में कुछ जानकारी देने के उद्देश्य से हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद ने 11 मार्च 1998 को एक अर्ध दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया। इसमें भौतिकी, रासायनिकी और फिजियोलॉजी एवं चिकित्सा विज्ञान के वर्ष 1997 के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों के कार्यों पर निम्नलिखित वक्ताओं द्वारा प्रकाश डाला गया। वार्ताएं हिंदी में प्रस्तुत की गयीं। चूँकि डॉ.

अहमद का स्वास्थ्य ठीक नहीं था, इसलिए उन्होंने मात्र अपनी वार्ता की भूमिका प्रस्तुत की तथा वार्ता का शेष भाग उनके लेसर एवं प्लाज्मा प्रौद्योगिकी प्रभाग के एक सहयोगी डॉ. जगताप ने प्रस्तुत किया। जिस सरलता के साथ सभी वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं, उसके लिए श्रोताओं ने वक्ताओं की काफी प्रशंसा की।

इस समारोह की अध्यक्षता तकनीकी समन्वय, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं रिएक्टर परियोजना वर्ग, भा. प. अ. केंद्र के निदेशक एवं परिषद अध्यक्ष श्री अनिल कुमार आनंद ने की। उन्होंने इस कार्यक्रम की लोक प्रियता पर संतोष किया। यह कार्यक्रम पिछले छः वर्षों से निरंतर आयोजित किया जा रहा है जिसके आयोजन के लिए उन्होंने संयोजक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल को बधाई दी। इससे पूर्व संयोजक डॉ. कोठियाल ने वक्ताओं का परिचय कराने के साथ-साथ उपस्थित सभी श्रोताओं/अतिथियों का स्वागत किया एवं कार्यक्रम में उपस्थित होने के लिए धन्यवाद ज्ञापन किया।

भौतिकी वार्ता :

विषय : 'प्रकाशीय मोलेस्सेज में परमाणु का शीतलन'

वार्ताकार : डॉ. एस. ए, अहमद, स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रभाग, भापअ केंद्र,

नोबेल पुरस्कार विजेता : डॉ. स्टेवन चू (अमरीकी), डॉ. विलियम डी फिलिप्स (अमरीकी), डॉ. क्लाउडे कोहेन तन्नौदजी (फांसिसी),

रासायनिकी वार्ता :

विषय : 'ए टी पी एंजाइम की आण्विक यांत्रिकी तथा सोडियम-पोटेशियम ए टी पी की खोज'

वार्ताकार : डॉ. के. पी. मिश्रा, विकिरण जीव-विज्ञान एवं जैव कार्बनिक प्रभाग. भापअ केंद्र

नोबेल पुरस्कार विजेता : डॉ. पॉल बायर (अमरीकी), डॉ. जॉन वाकर (ब्रिटिश), डॉ. जेन्स सी. स्काऊ (डेनिश)

चिकित्सा विज्ञान वार्ता :

विषय : 'प्रीऑन्स की खोज : जैव संक्रमण में एक नया सिद्धांत'

वार्ताकार : श्री के. सी. भैंसा, नाभिकीय जैव प्रौद्योगिकी प्रभाग, भापअ केंद्र.

नोबेल पुरस्कार विजेता : डॉ. स्टेनली बी. प्रुसिनर (अमरीकी)

प्रस्तुति : **डॉ. गो. प्र. कोठियाल**
संयोजक

विज्ञान कविता

तेज-पुंज-मय, 'जय विज्ञान'

गूँज उठा भारत-नभ-मंडल, जय-जय, भारत-मंगल-गान,
मनीषियों की तपस्थली में, तेज-पुंज-मय, 'जय-विज्ञान'।

सहसा भारत ने यह कैसा ? नव इतिहास रचाया है ?
सन चौहत्तर की घटना को, या उसने दोहराया है ?

ज्ञान और विज्ञान हमारा, विश्व को राह दिखाया था,
विदेशियों ने छल-छद्म से, "ग्रंथ विशेष" चुराया था।

मानवता की ऊँची बातें, हमको क्या सिखायेंगे ?
डॉ. भाभा - रविमंडल को, वे क्या दीप दिखायेंगे ?

भारत की वैज्ञानिक किरणें, नभ-मंडल में निखर पड़ीं,
विदेशियों की प्रतिभाएं अब खंड-खंड हो बिखर पड़ी।

धूल-धूसरित मान को अपने, होते अब शरमाते हैं
कोमल बगिया के प्रसून भी, उनको "बंब" दर्शाते हैं।

धन्य हैं अपने वैज्ञानिक जो, कौशल कर दिखलाये हैं,
"वैज्ञानिक-महफिल" में जग की, सरगम-राग मिलाये हैं।

श्लाघनीय डॉ. चिदाम्बरम्, काकोड़कर, डॉ. कलाम,
हृद-तंत्री से भेज रहे हैं, उन्हें नमन और दुआ-सलाम।

आओ। फिर से इस वसुधा पर, मैत्री का हम हाथ बढ़ायें,
मानवता की निर्झरिणी से, 'शांति-प्रेम" का रस सरसायें।

डॉ. रमाकांत पाठक
C-4/19 जीवन शांति, स्वामी विवेकानंद मार्ग,
सांताक्रुज (प.), मुंबई- 400 054

शीले की भतीजी : क्लोरीन

शीले की भतीजी क्लोरीन प्राय: अपने विशिष्ठ गुणों के कारण लोकप्रिय है। अपना परिचय बताते हुए वह कहती है – क्या आप जानते हैं कि मैं कौन हूँ ? नहीं तो मैं बताती हूँ कि मेरा नाम क्लोरीन है तथा मेरा रासायनिक सूत्र Cl_2, अणुभार 35 तथा संयोजकता 1 है। मेरी माताजी मैंगनीज डाई ऑक्साइड तथा पिताजी हाइड्रोक्लोरिक अम्ल हैं। मेरा जन्म 1774 में हुआ था। मेरे आकर्षक हरे-पीले रंग के कारण 'डेवी' अंकल ने मेरा नाम क्लोरीन रखा था। मुझे मिश्रित रूप में आप समुद्र, नदी एवं नालों में पा सकते हैं।

युवावस्था को प्राप्त करने के पूर्व ही पंद्रह वर्ष में मेरा विवाह एक होनकार पदार्थ ड्राई सिलेकेट लाइम से हुआ। हमें बहुत प्रसन्नता हुई जब हमारे यहां एक नये पदार्थ ने जन्म लिया। हमने उसका नाम रखा ब्लीचिंग पाउडर। इसने लोगों की सच्चे मन से सेवा की और हमारा नाम भी रोशन किया। हमारा यह शिशु पदार्थ हमेशा रोगियों की सेवा में रहता है और डॉक्टर भी उसकी इज्जत करते हैं।

मैं सूर्य के प्रकाश में बहुत चमकती हूँ तथा लोग एक सीमा तक मेरी सुगंध पसंद भी करते हैं, परंतु ध्यान रहे मेरी अधिक खुशबू हानिकारक भी है तथा आपको मौत की नींद में भी सुला सकती है। जो विद्यार्थी मेरी जीवनी पढ़ते हैं तथा परीक्षा पत्र में मेरे बारे में विस्तार से लिखते हैं, वे परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होते हैं।

आप जानते हैं मैं एक जादूगरनी भी हूँ। मैं नीले तथा लाल लिटमस पेपर के रंग बदल देती हूँ, तारपीन के तेल में डूबे हुए फिल्टर पेपर को जला सकती हूँ। मैं एन्टीमनी पाउडर, तरल सोडियम तथा पोटेशियम धातु के साथ डटकर मुकाबला करती हूँ। मैं सुंदर फूलों का रंग भी बिगाड़ सकती हूँ।

मैं स्वभाव से बहुत विषैली हूँ। हवा से मैं दो गुना भारी हूँ। मुझे अपने भाई पानी से बहुत स्नेह है। हम दोनों मिलकर क्लोरीन वाटर बनाते हैं। मुझ में बहुत सारे गुण भी हैं। मैं गंदे पानी को साफ करती हूँ, कीटाणुनाशक भी हूँ, सोने जैसी धातु को भी साफ करती हूँ तथा मरीजों के जख्मों को साफ करने के काम आती हूँ। इतना ही नहीं मैं युद्ध में दुश्मनों का शमन भी करती हूँ।

अब आप मेरा परिचय अवश्य जान गये होंगे। मैं आपकी मित्र भी हूँ तथा शत्रु भी। आप मेरे से मित्रता रखिए, मैं आपको लाभ देती रहूँगी।

डॉ. डी. डी. ओझा
गुरुकृपा, ब्रह्मपुरी हजारी, चबूतरा, जोधपुर 342 001

भारतीय कोयल : एक संक्षिप्त परिचय

दैनिक जीवन में हमें विभिन्न प्रकार के पक्षी दिखायी देते हैं, उनमें से कुछ तो हमारे प्रिय हो जाते हैं, चाहे यह उनके आकर्षक रंग, शारीरिक बनावट या सुरीली आवाज की वजह से हो। कोयल जिसका जंतु वैज्ञानिक नाम *इयूडाइनामस स्कोलोपेसिया* है, उन पक्षियों में से है, जिसकी सुरीली आवाज हम सभी को भाती है। कवियों ने तो कोयल को अपनी कविताओं में विशेष महत्व दिया है।

मुख्य रूप से कोयल भारत, पाकिस्तान, चीन आदि पूरे विश्व में पायी जाती है। नर कोयल प्राय: चमकीले काले रंग की होती है तथा उसकी चोंच पीले-हरे रंग की होती है। जबकि मादा कोयल भूरे रंग की होती है तथा इसकी चोंच पर सफेद चकत्ते होते हैं। कोयल प्राय: पत्तीदार पेड़ों व झाड़ियों में झुंड में पायी जाती है। कोयल मुख्य रूप से टिड्डे, दीमक व मकड़े इत्यादि को अपना भोजन बनाती है, इनके अलावा कुछ फल जैसे कि शहतूत आदि को भी खाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में "काफल" नामक स्वादिष्ट फल को तो यह बड़े चाव से खाती है और खुशी में झूमते हुए "काफल पाको" का उच्चारण करती है जिसका तात्पर्य है कि "काफल" पक गया है।

कोयल प्रवासन भी करती हैं। आमतौर पर जब मौसम इनके लिए अनुकूल नहीं रह जाता तो ये एक स्थान से दूसरे स्थान को चली जाती हैं। विभिन्न प्रकार की कोयलों में प्रवासन का समय व अवधि अलग-अलग होती है किंतु एक ही प्रकार की कोयलों में प्रवासन का समय व अवधि नियत होती है। गर्मियों में कोयल दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर प्रजनन हेतु प्रवासन करती हैं जो कि वहां के मुकाबले थोड़ा ठंडा रहता है और फिर पतझड़ के मौसम में वापिस वहीं लौट जाती हैं। इनका प्रवासन मुख्यत: दिन के समय होता है तथा प्रवासन का एक निश्चित पथ होता है। गर्मियों के मौसम में जब इनका प्रजनन काल होता है, उस समय नर कोयल अपनी सुरीली आवाज से मादा कोयल को आकर्षित करता है। हमें जो कोयल की सुरीली आवाज सुनाई देती है वह नर कोयल की होती है। कोयल अपना घोंसला नहीं बनाती। ये अपने अंडे कौवे के घोंसले में देती है। मादा कौआ उन्हें अपने अंडे समझकर सेती है। लगभग 13 दिनों बाद उसमें से बच्चे बाहर निकलते हैं। इस बीच कोयल कभी-कभी आकर इन्हें देखती रहती है। इन बच्चों को भोजन तब तक कौआ ही करवाता है जब तक कि वे स्वयं ही अपना भोजन न ढूंढ़ सकें। शीघ्र ही ये बच्चे उड़ना भी सीख जाते हैं।

कोयल की याद्दाश्त बहुत तेज होती है। ये जिस घोंसले में अंडे देती है उसे नहीं भूलती। प्रवासन के समय भी ये अपने रास्ते को नहीं भूलती।

हमारे दैनिक जीवन में कोयल का काफी महत्व है। यह विभिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़ों को नष्ट करती है। यह बहुत से पौधों में परागण की क्रिया को संपन्न कराती है। कोयल की विष्ठा उर्वरक का काम करती है जिसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, कैल्सियम, लोहा आदि महत्वपूर्ण अवयव होते हैं। कोयल की मुधर आवाज तो हर किसी का मन मोह लेती है।

सुषमा नेगी
द्वारा श्री अरविंद सिंह नेगी, पौध-पशु संबंधित विभाग,
भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान,
ग्वालियर मार्ग, झांसी - 28400

आजीवन सदस्यता / "वैज्ञानिक" ग्राहकों के लिए आवेदन पत्र का प्रारूप

डॉ. सतीश कुमार गुप्ता

कोषाध्यक्ष, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, रिएक्टर सुरक्षा प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400 085.

प्रिय महोदय

मैं, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद (भापअ केंद्र, मुंबई) का आजीवन सदस्य / "वैज्ञानिक" पत्रिका का ग्राहक बनने का इच्छुक हूं। मेरा निजी विवरण एवं शुल्क संबंधित विवरण निम्नलिखित है :

नाम (हिंदी में) :_____ (अंग्रेजी में) :_____

पता (हिंदी में) :_____ (अंग्रेजी में) :_____

_____ _____

_____ _____

व्यवसाय :_____ _____

हिंदी की पात्रता :_____ प्रवीणता _____

(Qualification) (Specialisation)

डिमांड ड्राफ्ट सं. . . . . .दिनांक. . . . . बैंक . . . . . .रु. . . . . .

दिनांक : हस्ताक्षर :

***शुल्क 'हिंदी विज्ञान साहित्य परीषद' के नाम केवल डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई) द्वारा ही कोषाध्यक्ष को भेजें।**

कुछ फूल : कुछ कांटे

मैं आपकी पत्रिका का नियमित पाठक रहा हूँ। 'अंतरिक्ष विज्ञान विशेषांक' में भारतीय वरिष्ठ वैज्ञानिकों के बहुत से लेख पढ़ने को मिले जिससे पता चलता है कि इस दिशा में भारत ने काफी प्रगति कर ली है। सभी लेख अपना उदाहरण आप हैं। पर अंतरिक्ष विज्ञान से मानव को जो लाभ हो सकते हैं उनमें से उस एक विशेष लाभ का वर्णन किसी लेख में नहीं है जिसकी हम अपेक्षा कर रहे थे और न कभी इससे पहले इस विषय पर किसी लेख में 'वैज्ञानिक' या किसी भी हिंदी पत्रिका में कुछ आया, इस पर आश्चर्य है। वह यह है कि भविष्य में अंतरिक्ष में एक बहुत बड़ा स्टेशन बनेगा जिससे सूर्य की विकिरण ऊर्जा को परावर्तित करके पृथ्वी पर फ़ोकस करके भेजा जायेगा, जहाँ वह मीलों दूर तक फैली सूर्यबैटरियों की चादरों पर गिरकर बहुत बड़ी मात्रा में बिजली पैदा करेगी जिसे सारे विश्व में बांटा जायेगा। इस प्रकार की सौर बैटरियों की चादरों के लिए सबसे अच्छी जगह आस्ट्रेलिया में होगी। इसकी जानकारी मुझे एक रेडियो रिपोर्ट से मिली थी।

आपकी पत्रिका की भाषा बड़ी क्लिष्ट तथा संस्कृतनिष्ठ होती है और यही विशेष कारण है इस पत्रिका में लोगों की रुचि कम होने का। टी.वी. युग होते हुए भी वायस ऑफ जर्मनी और बी. बी. सी. रेडियो प्रसारण हिंदी सेवाएं तीन विशेष कारणों से काफ़ी अधिक लोकप्रिय हैं : (1) उच्चस्तर, (2) तीव्र गति (कम से कम समय में अधिक से अधिक जानकारी तथा (3) भाषा की अति सरलता। तीसरा कारण इनकी असाधारण लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण है। इन सेवाओं में यह नहीं देखा जाता कि भाषा में लोकप्रिय जो शब्द प्रयोग होते हैं वे ठेठ संस्कृत के हैं या 'हिंदुस्तानी' के या चलते फिरते उर्दू के पर 'वैज्ञानिक' में संस्कृत भाषा के कठिन शब्दों की ठूंसाठूंसी की जाती है। विशेषकर जो विज्ञान समाचार 'भा. प. अनुसंधान केंद्र से' के शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत किये जाते हैं उनमें भाषा कठिनतम होती है ।

विज्ञान पहेलियां और विज्ञान कविताएं मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। उनकी सख्याएं बढ़ाई जाये। 'बाल विज्ञान' बस ठीक है। 'गोष्ठी समाचार' एकदम बेकार चीज़ है।

"वैज्ञानिक" में पिछले कई वर्षों से यह रहा है कि हर अंक के किसी एक लेख विशेष पर संपादकीय लिखा जाता है और शेष सभी को दूसरे दर्जे का बना दिया जाता है। होना यह चाहिए कि किसी भी अंक के सब लेखों पर संपादकीय में थोड़ा-थोड़ा ही लिखा जाये। यदि यह संभव नहीं तो फिर संपादकीय में पत्रिका में प्रकाशित किसी लेख के विषय को न छूकर अपनी ओर से कोई विशेष बात की जाये।

22-7-98

सलाहुद्दीन अहमद
रेडियो रसायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

वैज्ञानिक उपलब्धियों को जन-जन तक पहुंचाने का एक मात्र माध्यम राजभाषा हिंदी ही है। लेकिन यह थोड़ा दुरुह कार्य अवश्य है। 'वैज्ञानिक' पत्रिका में प्रकाशित विज्ञान संबंधी कविताएं मनोरंजन तथा ज्ञानवर्द्धक साबित होंगी। "वैज्ञानिक" स्कूल तथा कॉलेज की नियमित पत्रिका का स्थान ले रही है। आशा है यह पत्रिका भविष्य में भी अनवरत प्रकाशित होती रहेगी।

'संचार/प्रसार माध्यमों के बढ़ते कदम', लेखक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल, एक सारगर्भित लेख है। निःसंदेह डॉ. जगदीश चंद्र बसु, मारकोनी द्वारा विकसित "बेतार" से लेकर उपग्रहीय प्रसारण, इंटरनेट, इन्फॉर्मेशन हाईवे, सुपर हाईवे आदि के अण्वेषण की कहानियां तथा उनके प्रयोग बुहत ही रोचक हैं। कहा नहीं जा सकता कि कल के समय में ही एक और नयी संचार प्रणाली विकसित हो जाये जो वर्तमान से भी अधिक सुव्यवस्थित हो। लेख में आधुनिक संचार प्रणालियों के सदुपयोग के साथ-साथ दुरुपयोग को लेकर किया गया चिंतन भी विचारणीय है जो वैज्ञानिक जगत को सोचने पर बाध्य भी करता है। अन्य लेख भी सूचनाप्रद रहे। बकमिन्स्टर

फुलरिन का आविष्कार अत्याधुनिक है। इसके बहु आयामी अनुप्रयोगों को तलाशना जारी है। इसके अतिरिक्त अनेकों ज्ञानवर्द्धक/सूचनाप्रद टिप्पणियों से भरा वैज्ञानिक का यह "प्रतियोगिता विशेषांक" सर्व साधारण विद्यार्थियों आदि के लिए भी लाभप्रद होगा, ऐसी मेरी आशा है।

28-4-98

भगत राम नौटियाल
वैज्ञानिक, पृथक्करण प्रक्रम क्षेत्र,
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून 248 005

अंतरिक्ष विषयक जानकारियों से परिपूर्ण यह अंक काफी रोचक बन पड़ा है। प्रथम भारतीय महिला 'कल्पना चावला' एवं विश्व की प्रथम अंतरिक्ष अनुसंधानकत्री महिला- 'वेलेनतिना तेरेशकोवा' के विषय में दी गयी जानकारियां काफी रोचक एवं ज्ञानवर्धक हैं। यद्यपि कल्पना चावला की उपलब्धियों को लेकर हम सभी भारतवासी बहुत ही खुशी और गर्व का अनुभव कर रहे हैं परंतु कल्पना चावला की उपलब्धियां हम सभी भारतवासियों, और विशेषकर वे लोग जो नीति नियामक कुर्सियों पर महंत बने बैठे हैं, के लिए एक बार फिर अपना-अपना आत्ममंथन एवं आत्मविवेचन करने की सद्प्रेरणा दे रही हैं, कि - (i) क्या यदि कल्पना चावला आज भारत में होती तो वह इन बुलंदियों तक पहुंच पाती ? (ii) क्या डॉ. हरगोविंद खुराना भारत में होते तो नोबेल पुरस्कार पाने लायक कार्य करने को स्वतंत्र रहते ? (iii) क्या ये लोग भारत में होते तो वे अपने संस्थान के सीनियर्स एवं निदेशक आदि की उपेक्षा एवं प्रताड़ना का शिकार न हो गये होते ? (iv) कि क्या देश में लोग येन-केन प्रकारेण विभिन्न पदों पर (कुछ योग्य अपवादों को छोड़कर) पहुंच गये हैं, केवल वही प्रतिभावान हैं और जो नहीं हो सके वे सभी प्रतिभाशून्य हो गये ? वस्तुतः अपनी प्रतिभा एवं पुरुषार्थ के बल पर असीम ऊंचाइयों को छूने वाले किसी खुराना या किसी कल्पना चालवा को अपना बनाकर, अपनी आत्मश्लाघा कर हम अपने उन सभी दुर्गुणों, कमजोरियों एंव वादों (इज्म) पर पर्दा डाल देते हैं जिनके कारण भारतवर्ष में न तो कोई खुराना आगे आने पाता है और न ही कोई चावला।

पत्रिका में जन-सामान्य की रुचि की कुछ ऐसी सामग्री दिये जाने का प्रयास होना चाहिए जिससे कि समाज का हर वर्ग इस पत्रिका से जुड़ सके। और पत्रिका का प्रचार-प्रसार हो सके।

पत्रिका को वर्तमान स्तर तक पहुंचाने के लिए आप सभी साधुवाद के पात्र हैं।

12-8-98

डॉ. राजकिशोर
डॉ. रा. म. लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
पोस्ट बैग नं. 17,
फैजाबाद 224 001

वैसे तो 'वैज्ञानिक' अपने आप में एक उच्च स्तरीय शोध पत्रिका है, परंतु अगर इसमें भारत तथा विश्व के प्रमुख शोध संस्थानों के बारे में, उनमें हो रहे शोधों तथा उनकी विस्तृत जानकारियों का समावेश हो तो हम जैसे अनेक विज्ञान छात्र इससे और अधिक लाभांवित हो सकेंगे। आशा है संपादक मंडल इस पर विचार करेगा।

15-6-98

कृषिचयन
एम. एससी. (भौतिक विज्ञान),
द्वारा डॉ. चतुर्भुज साहु, रीडर एवं विभागाध्यक्ष,
मानव विज्ञान विभाग, गिरीडीह कॉलेज,
गिरिडीह (बिहार) - 815 301

वैज्ञानिक का अंक मिला तथा साथ ही अत्यंत दुखः हुआ कि इस वर्ष की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार के योग्य कोई भी लेख नहीं पाया गया एवं अहिंदी भाषी लेख भी मात्र तीन ही प्राप्त हुए। संभवतः ऐसा लेखकों के लिए प्रोत्साहन का कम होने के कारण ही है। मेरे विचार से अगले वर्ष से यदि पुरस्कारों की संख्या बढ़ाई जाय तो उचित होगा।

इस संदर्भ में उल्लेख है कि यदि आर्थिक कठिनाई हो तो पुरस्कार की राशि के स्थान पर मात्र एक अच्छा-सा सर्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) दे सकते हैं।

29-5-98

एन. के. बौहरा
प्लॉट न. 389, गली न. 10,
मिल्कमैन कॉलोनी, पॉल रोड, जोधपुर (राज.)

मैंने अक्तूबर-दिसंबर 97 अंक पढ़ा, बेहद अच्छा लगा। अंतरिक्ष के बारे में इस अंक ने गागर में सागर भरने की पूर्ण कोशिश की है। परंतु संपादकीय पढ़कर एक प्रश्न दिमाग में आया। अंतरिक्ष में इस समय लगभग 2000 मृत उपग्रह चक्कर काट रहे हैं इन उपग्रहों को पृथ्वी पर वापस नहीं लाया जायेगा तो प्रकृति में असंतुलन पैदा नहीं हो जायेगा ? अगर असंतुलन नहीं होगा तो क्यों नहीं, अगर होगा तो किस प्रकार का असंतुलन ? उत्तर चाहता हूँ।

वैज्ञानिकों के अनुसार सभी जीव-जंतु, पेड़-पौधे एवं पदार्थों की भौतिकीय अवस्था में परिवर्तन होता है और फिर वे पृथ्वी में विलय हो जाते हैं जिससे प्रकृति का संतुलन बना रहता है। पत्रिका की निरंतर प्रगति के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

12-7-98

प्रभु नारायण बर्मा
ग्रा. राँगामाटी, पो. दुम्मा,
जि. गिरिडीह (बिहार) 815 318

वैज्ञानिक का अक्तूबर-दिसंबर 1996 अंक प्राप्त हुआ। हार्दिक धन्यवाद। अब तक पत्रिका का वर्ष 1997 का पहला अंक आ जाना चाहिए था। आशा है, यह देरी ठीक कर ली जायेगी।

इस अंक के भी सभी लेख व रचनाएं पसंद आयीं। देश के सभी क्षेत्रों के लेखकों का सहयोग आप को मिल रहा है। पत्रिका का और अधिक प्रचार करने की जरूरत है। इसका वार्षिक तथा आजीवन शुल्क सामान्य शिक्षित परिवार के लिए बहुत ज्यादा नहीं है। यदि देश के जागरूक परिवार पत्रिका की सदस्यता स्वीकार कर लें तो विज्ञान और हिंदी के हित में यह एक बड़ा कदम होगा।

विज्ञान समाचार, पुस्तक समीक्षा आदि स्तंभों की सामग्री और पृष्ठ संख्या बढ़ाकर सामान्य पाठकों को भी आकर्षित किया जा सकता है। पत्रिका की उन्नति की कामना है।

14-5-98

ओमप्रकाश वर्मा
ई-4, एन. एम. एल., जमशेदपुर 831 007,

"वैज्ञानिक" का अक्तूबर-दिसंबर 1997 अंक (अंतरिक्ष विज्ञान विशेषांक) प्राप्त हुआ। सभी लेख जानकारी पूर्ण एवं अच्छे लिखे हुए थे। इस कार्य के लिए सभी संबंधित सदस्यों को बधाई।

1-7-98

ओम प्रकाश सप्रा
इसरो उपग्रह केंद्र, एयर पोर्ट रोड,
विमानपुरा (पो.), बैंगलूर - 560 017

'वैज्ञानिक' के माध्यम से हिंदी भाषा में विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति हो रही है। वर्षों से दिनों दिन इसके स्तर में उत्तम से अति उत्तम की ओर प्रगति हो रही है आपकी पूरी टीम को इस स्तुत्य कार्य के लिए साधुवाद।

23-6-98

डॉ. ए. एल. जैन
अध्यक्ष, रसायन विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर कॉलेज, मान्डफिया,
'शुभम', A-64 सेन्थी, बापू नगर,
चित्तौड़गढ़ - 312 001

"वैज्ञानिक पत्रिका" का अंतरिक्ष-विज्ञान विशेषांक प्राप्त हुआ। इस अंक में प्रकाशित सभी लेख काफी उत्कृष्ट एवं उच्च दर्जे के हैं। इसके प्रकाशन में आपका तथा सभी सहयोगियों का प्रयास सराहनीय है।

29-5-98

एल. एन. गुप्ता
वैज्ञानिक,
इसरो उपग्रह केंद्र, एयर पोर्ट रोड,
विमानपुरा (पो.), बैंगलूर - 560 017

❐❐❐

समीक्षा

पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स

फरवरी 1998 से रायपुर (मध्यप्रदेश) से *'पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स'* नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ है । वैज्ञानिक के कार्यालय में 'पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स' पत्रिका के अंक 3 और अंक 4 की प्रतियां प्राप्त हुईं । इन अंकों को पढ़कर पत्रिका के विविध विषयों, स्वरुप एवं स्तर की जानकारी मिली । जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पत्रिका मुख्य रुप से पर्यावरण-संरक्षण और ऊर्जा के विविध स्रोतों से संबंधित लेखों का प्रकाशन करके जन-साधारण में पर्यावरण के प्रति जागरुकता पैदा करने का प्रयास कर रही है । इन विषयों के अलावा, पत्रिका में अनेक रोचक एवं ज्ञानवर्धक लेखों का समावेश है । महत्त्वपूर्ण समाचार-सार, प्रौद्योगिकी, उपयोगी उत्पाद, भेंट-वार्ता, वनस्पतियों के विविध उपयोग, वैज्ञानिकों का जीवन, वेदों में निहित ज्ञान, खुला पत्र इत्यादि स्तंभों के अंतर्गत छपे लेखों से पाठकों का भरपूर ज्ञानवर्धन अवश्य होगा ।

पत्रिका की भाषा पठनीय एवं बोधगम्य है । संपादकीय में आम बोल-चाल की भाषा एवं कहावतों का प्रयोग मुखर है । अंग्रेजी तकनीकी शब्दों के स्थान पर देशी प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है । सब मिलाकर पत्रिका पठनीय एवं ज्ञानवर्धक है ।

यथेष्ट 'प्रूफ रीडिंग' के अभाव में मात्रा की त्रुटियां यत्र-तत्र दिखाई देती हैं । अंक -4 के मुख पृष्ठ पर प्रदूषण के स्थान पर 'प्रदुषण' छपा देखकर निराशा हुई । संपादकीय में 'स्रोत' के स्थान पर 'स्त्रोत' का बार-बार आना पाठकों के मन में भ्रांति उत्पन्न करने वाला है । अंक-3 के मुख पृष्ठ की दूसरी ओर प्रधानमंत्री के छायाचित्र के ऊपर लिखी दो पंक्तियों में "राष्ट्र-भक्ति का ज्वार न रुकता" की मात्रा-त्रुटि पाठक के मन में खटकती है । अतः आवश्यक है कि संपादक मंडल मात्रा की त्रुटियों पर विशेष ध्यान दे तथा पत्रिका का स्तर ऊंचा उठाये ।

पत्रिका की कीमत (25 रु .) भी कुछ अधिक लगती है । वांछनीय है कि - प्रकाशक-मंडल विज्ञापनों द्वारा आय प्राप्त करके पत्रिका की कीमत घटाने का प्रयास करे । इन सबके बावजूद भी पर्यावरण, ऊर्जा और प्रौद्योगिकी पर हिंदी भाषा में प्रकाशित पत्रिका 'पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स' स्वागत के योग्य है ।

डॉ. राज नारायण पांडेय
'संपादक' वैज्ञानिक

❑❑❑

लेखकों से निवेदन

"वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- ❑ लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये,
- ❑ लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- ❑ कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- ❑ लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- ❑ विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें,
- ❑ डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही अस्वीकृत रचनाएं वापस की जायेंगी ।

- संपादक

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉंबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियो आइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रूप से विकास किया है एवं देश - विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं सेवाएं इस प्रकार हैं :

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचों तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई. सैट, वी. कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रूई, शल्य ब्लेड, दस्तानें, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)

वि. ना. पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.

टेलीफोन : 555 1676/555 3145

तार : ब्रिट एटम, बम्बई - 94, टेलेक्स : 011 72212 ब्रिट इन

With Best Compliments from

INDIAN RARE EARTHS LTD.

Offers the following products :

Beach Sand Minerals

Ilmenite (TiO_2 : 60%, 55% & 50%)
Natural Rutile
Zircon/Zircon Flour
Granular Silimanite (-65 to + 100 Mesh)
Garnet
Leucoxene and
Synthetic Rutile

Rare Earths

Rare Earths Chloride
(original and heavies-lean)
Rare Earths Fluoride
Rare Earths Oxide
Cerium Oxide/cerium Hydrate
Didymium Carbonate
Samarium/Yttrium/Gadolinium/Europium
Concentrates (Individual and Mixed)

Particular attention of Interested buyers/users is drawn to the following products available at ver attractive prices :

Synthetic Rutile (93% TiO_2)
Ilmenite : MK Grade (55% TiO_2 Min.)
Zircon (65% ZrO_2 with max 0.2% TiO_2 and 0.1 Fe_2O_3)
Granular Silimanite (Min. 59% Al_2O_3)
Samarium Oxide (96%)

For futher details, please contact :

The Chief General Manager (Mktg.)
Indian Rare Earths Ltd.
Sherbanoo, 6th Floor, 111, Maharshi Karve Road,
Churchgate, Mumbai - 400 020. INDIA
Tel. : (022) 209 6800, 203 0915 # Fax : (022) 200 4430
Tlx. : (11) 83122, 83254 # Cable : RAREARTH, BOMBAY, INDIA

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा श्री इंद्र कुमार शर्मा द्वारा प्रिंट शॉप, चेंबूर, मुंबई (फोन : 555 2348 / 556 5279) में मुद्रित व प्रकाशित ।

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र , हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत ।

भारत सरकार
परमाणु ऊर्जा विभाग

नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र

हैदराबाद - 500 062

निम्नलिखित पदार्थों का वाणिज्यिक स्तर पर निर्माण एवं उनकी आपूर्ति की जाती है :-

संधिरहित जंगरोधी इस्पात नलिकाएं / पाइप

रसायन, उर्वरक, धातुकीय, पेट्रोरसायन, तेलशोधक, नाभिकीय तथा विद्युत उत्पादन के उद्योगों के लिए एएसटीएम ए 312/213/269 के अनुसार ऑस्टेनिटिक स्तर की नालिका/पाइप का तीसरे पक्ष/ एन. एफ. सी. द्वारा निरीक्षण ।

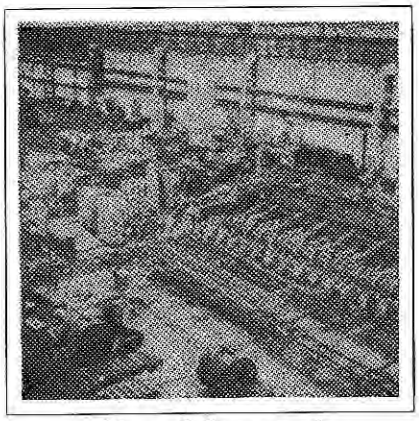

क्षैतिज बहिर्वेधन दाब से

ठेके का कार्य

ग्राहकों द्वारा कच्चे माल दिये जाने पर कुप्रोनिकल, टाइटेनियम और अन्य फेरस व अ-फेरस श्रेणियों को बहिर्वेधन/शीत वेल्लन की वेयरिंग इस्पात नलिकाओं में बदलने के लिए काम स्वीकारे जाते हैं ।

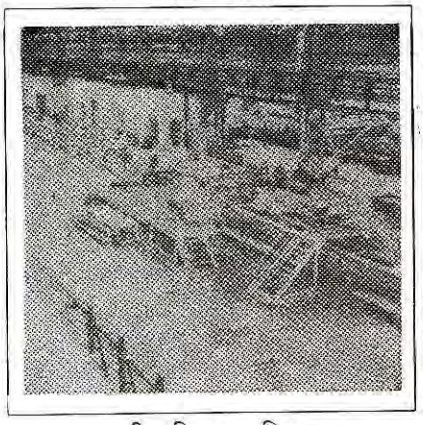

शीत पिल्गरन मिल

अतिउच्च शुद्धता के विशेष पदार्थ

इलेक्ट्रॉनिक उद्योग के लिए 99.999% शुद्धता के ऐंटीमनी, बिस्मथ, इंडियम, कैडमियम, जिंक, स्वर्ण, स्वर्ण पोटैशियम साइनाइड आदि की आपूर्ति ।

फोटोकॉपी के लिए अति उच्च शुद्धता के सेलेनियम व टेल्युरियम, इलेक्ट्रॉनिक बल्ब के निर्माण के लिए जर्कोनियम चूर्ण, रसायन और उर्वरक उद्योगों के लिए टेंटालम चादरों तथा छड़ों और संविरचित पदार्थों की आपूर्ति ।

अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए लिखें :

विपणन प्रबंधक,

नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र

पोस्ट : इ. सी. आई. एल., हैदराबाद 500 062.

● दूरभाष : 7120151 विस्तार (4224) ● (सीधे) 7121239

● टेलेक्स : 0425-7004 ● ग्राम : "एनयूसीएफक्यूड्एल"

● फैक्स : 040-7121209, 7121305

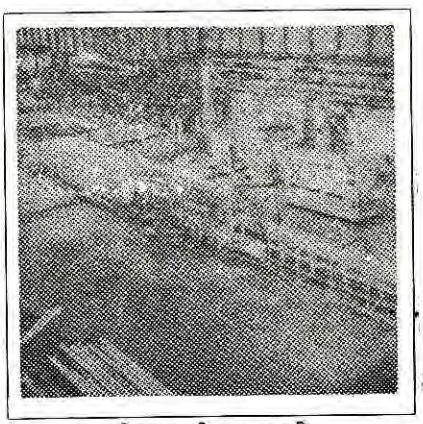

दीप्त अनीलन भट्टी

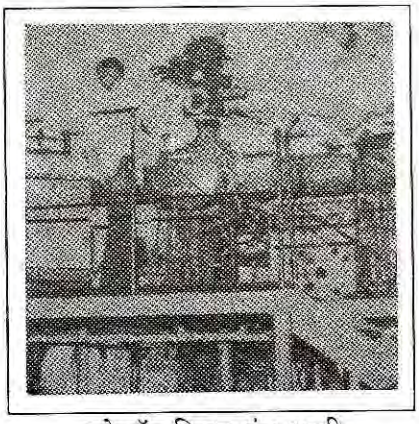

इलेक्ट्रॉन किरण पुंज भट्टी